

अच्छे लोग हार क्यों जाते हैं?



कामरान असद

अच्छे लोग हार क्यों जाते हैं?

ईमानदारी, स्वार्थ और समाज के विरोधाभासों को समझने की एक सरल पड़ताल

© 2026 कामरान असद. सर्वाधिकार सुरक्षित।

इस पुस्तक की जानकारी केवल सामान्य जानकारी और शिक्षा के उद्देश्य से है। यह चिकित्सा, कानूनी, वित्तीय या किसी अन्य पेशेवर सलाह का विकल्प नहीं है। कोई भी कदम उठाने से पहले किसी योग्य विशेषज्ञ से सलाह लें। इस पुस्तक में आय, इलाज या किसी विशेष परिणाम की कोई गारंटी नहीं दी गई है।

विषय-सूची

1. वह सवाल जो हर ईमानदार इंसान कभी न कभी पूछता है	4
2. नैतिकता बनाम अवसरवाद	12
3. अच्छे लोगों की असफलता के असली कारण	21
4. रिश्तों में स्वार्थ का चेहरा	30
5. पैसा और प्रतिष्ठा का दबाव	38
6. सत्ता और प्रभाव का खेल	47
7. सामाजिक दोहरापन	55
8. वास्तविक उदाहरण: जब सच्चाई की कीमत चुकानी पड़ी	63
9. आत्मसम्मान: अपनी कीमत खुद तय करना	72
10. क्या अच्छे लोग सच में हारते हैं?	81
11. समझदार अच्छाई: भोलेपन से आगे	89
12. आगे का रास्ता: एक व्यावहारिक कार्ययोजना	97

अध्याय 1: वह सवाल जो हर ईमानदार इंसान कभी न कभी पूछता है

तीन साल पहले की बात है। दफ्तर में रमेश हर सुबह सबसे पहले पहुँचता था और रात को सबसे आखिर में निकलता था। रिपोर्टें समय पर बनतीं, गलती होती तो वह खुद मान लेता। फिर प्रमोशन की सूची आई। उसमें नाम उस सहकर्मी का था, जो मीटिंग में बोलना जानता था और बॉस की हर बात पर मुस्कुराता था। रमेश ने बधाई दी, मुस्कुराया, और रात को छत पर बैठकर बहुत देर तक चुप रहा।

अगर यह कहानी आपको अपनी-सी लगी, तो यह किताब आपके लिए है।

एक आम कहानी

यह कहानी सिर्फ दफ्तर की नहीं है। यह घर, रिश्तेदारी, दोस्ती, व्यापार और राजनीति, हर जगह अलग-अलग कपड़े पहनकर आती है।

- जो बेटा हर ज़िम्मेदारी चुपचाप निभाता है, उसे "समझदार" कहकर और काम दे दिया जाता है, जबकि मीठा बोलने वाले भाई की तारीफ़ होती है।
- जो दोस्त हमेशा मदद के लिए खड़ा रहता है, उसे तब कोई नहीं पूछता जब उसे खुद ज़रूरत पड़ती है।
- जो दुकानदार सही माल सही दाम पर बेचता है, उसके सामने वह खड़ा होता है जो चमकदार विज्ञापन और झूठे वादों से भीड़ खींच लेता है।

हर बार नतीजा एक-सा दिखता है: सच्चा इंसान पीछे, चालाक आगे। और तब मन में वही सवाल उठता है, "क्या ईमानदारी सिर्फ किताबों में अच्छी लगती है?"

यह सवाल गलत नहीं है

कई लोग इस सवाल को कड़वाहट या जलन समझ लेते हैं। लेकिन यह सवाल अक्सर तब उठता है जब इंसान ने सचमुच कीमत चुकाई हो। यह शिकायत से ज़्यादा समझने की कोशिश है। इसे दबाने के बजाय ईमानदारी से परखना बेहतर है, और यही इस किताब का काम है।

"अच्छा" किसे कहते हैं?

सवाल का जवाब ढूँढने से पहले दो शब्द साफ़ करने होंगे: "अच्छा" और "हारा हुआ"। ज़्यादातर उलझन यहीं से शुरू होती है।

हमारी अलग-अलग परिभाषाएँ

कोई कहता है, "अच्छा वह है जो किसी का बुरा न करे।" कोई कहता है, "जो सबकी मदद करे।" कोई और कहता है, "जो कभी मना न करे।" ये तीनों बहुत अलग बातें हैं। तीसरी परिभाषा तो अक्सर अच्छाई कम और डर ज़्यादा होती है, यानी मना करने से डरना, किसी को नाराज़ करने से डरना।

इस किताब में हम "अच्छे इंसान" का मतलब यह लेंगे: वह व्यक्ति जो सच बोलने, दूसरों के साथ न्याय करने और अपने वादे निभाने की कोशिश करता है, भले ही इसमें उसे नुकसान हो।

"हार" का पैमाना किसने बनाया?

अब दूसरा शब्द। हम किसे हारा हुआ मानते हैं? अक्सर जवाब होता है: जिसके पास कम पैसा, कम पद या कम पहचान हो। यानी पैमाना बाहर से आता है, समाज से, रिश्तेदारों से, सोशल मीडिया की तस्वीरों से।

बात	आम परिभाषा	इस किताब का नज़रिया
अच्छा इंसान	जो सबको खुश रखे	जो सच और न्याय पर टिके
जीत	पद, पैसा, तारीफ़	नतीजा और अपनी नज़र में इज़्ज़त, दोनों
हार	कम पैसा या कम पहचान	बिना समझे दूसरों के हाथों इस्तेमाल होना
ईमानदारी	अच्छी, पर महँगी चीज़	एक ताकत, जिसे समझदारी चाहिए

ध्यान दें, हम यह नहीं कह रहे कि पैसा या पद बेकार हैं। हम सिर्फ़ यह पूछ रहे हैं कि क्या सिर्फ़ वही जीत का पैमाना होना चाहिए।

इस किताब में हम क्या खोजेंगे?

यह किताब कोई जादुई नुस्खा या "तीन दिन में सफलता" का वादा नहीं करती। यह एक लंबी, खुली बातचीत है। हम इन सवालों पर सोचेंगे:

1. नैतिकता और अवसरवाद में असल फ़र्क क्या है, और अवसरवादी को कब फ़ायदा मिलता है?
2. अच्छे लोग कई बार खुद अपनी हार की वजह कैसे बन जाते हैं?
3. रिश्तों में स्वार्थ कैसे घुसता है और हम उसे कैसे पहचानें?
4. पैसा, प्रतिष्ठा और सत्ता का दबाव इंसान के फ़ैसलों को कैसे मोड़ता है?
5. समाज दोहरे मापदंड क्यों रखता है?
6. आत्मसम्मान क्या है, और क्या अच्छा होने के साथ समझदार होना भी संभव है?

एक ज़रूरी चेतावनी

इस किताब में "अच्छे लोग" और "बुरे लोग" के दो साफ़ खेमे नहीं हैं। असल ज़िंदगी में हम सब दोनों के मिश्रण हैं। कभी हम रमेश होते हैं, कभी उसका सहकर्मी। ईमानदारी से खुद को देखना भी इस सफ़र का हिस्सा है।

इस किताब को कैसे पढ़ें?

पढ़ने का तरीका उतना ही मायने रखता है जितनी किताब। नीचे एक सरल तरीका है।

पढ़ने के चरण

1. एक बार में एक अध्याय पढ़ें। लगभग 20 से 25 मिनट काफ़ी हैं। जल्दबाज़ी में कई अध्याय निपटाने से बातें दिमाग में टिकती नहीं।

2. **पढ़ते समय एक नाम सोचें।** किसी असली व्यक्ति, या खुद को, उदाहरण के रूप में रखें।
3. **अंत के सवालों को लिखें।** हर सवाल का जवाब कम से कम दो-तीन वाक्यों में एक कॉपी में लिखें।
4. **एक दिन रुकें।** अगले अध्याय से पहले कम से कम एक दिन सोचने दें।
5. **अपने जवाब बाद में दोबारा पढ़ें।** किताब खत्म करने के बाद देखें कि आपकी सोच कितनी बदली।

यह क्यों काम करता है? क्योंकि सोच तब बदलती है जब हम बातों को अपने अनुभव से जोड़ते हैं। सिर्फ पढ़ना जानकारी देता है, लिखना समझ देता है।

सुझाव: जवाब लिखते समय खुद को "सही" साबित करने की कोशिश न करें। जो सचमुच महसूस होता है, वही लिखें। कोई और इसे नहीं पढ़ेगा।

सोचने वाले सवाल

1. आपके जीवन की वह कौन-सी घटना थी जब आपको लगा कि सच्चाई के कारण आप पीछे रह गए?
2. आप "अच्छा इंसान" किसे कहते हैं? क्या यह परिभाषा आपकी अपनी है या आपको सिखाई गई है?
3. आप अपनी "जीत" किसे मानते हैं, और उस पैमाने को किसने तय किया?

4. क्या कभी आपने खुद किसी अच्छे इंसान को नज़रअंदाज़ किया है? तब आपने ऐसा क्यों किया?

रमेश की कहानी यहीं खत्म नहीं होती। आगे के पन्नों में हम देखेंगे कि उस छत की चुप्पी के बाद क्या हो सकता है।

तीन छोटे उदाहरण

रमेश अकेला नहीं है। आस-पास झाँकें तो ऐसी कहानियाँ आसानी से मिल जाती हैं।

शबनम, स्कूल की शिक्षिका। वह हर बच्चे की कॉपी ध्यान से जाँचती है और कमज़ोर बच्चों को छुट्टी के बाद रोककर पढ़ाती है। प्रिंसिपल की नज़र में वह शिक्षिका आगे है जो समारोहों में मंच सँभालती है और फ़ोटो में हमेशा दिखती है। शबनम का काम बच्चों के नतीजों में दिखता है, पर रिपोर्ट में उसका ज़िक्र नहीं होता।

अनिल, छोटा ठेकेदार। उसने तय किया कि घटिया सामान नहीं लगाएगा। इस वजह से उसकी बोली दूसरों से ऊँची रही और कई काम हाथ से निकल गए। पर जिन घरों में उसने काम किया, वहाँ से लोग आज भी दूसरों को उसका नाम बताते हैं। यह जीत धीमी है और हर बार दिखती नहीं।

सीमा, संयुक्त परिवार की बहू। वह हर त्योहार की तैयारी सँभालती है और किसी से शिकायत नहीं करती। घर के लोग उसे "अपनी ही तो है" कहकर निश्चित हो जाते हैं, और उसकी थकान किसी को नहीं दिखती।

इन उदाहरणों से क्या समझ आता है

ऊपर की तीनों कहानियों में एक बात साझा है: अच्छाई चुपचाप काम करती है, और जो चुप रहता है उसे अक्सर गिना ही नहीं जाता। लेकिन तीनों में एक फ़र्क भी है। अनिल को देर से ही सही, भरोसे की कमाई मिली। शबनम और सीमा ने अपनी बात कभी कही ही नहीं। यानी हर बार हार की वजह सामने वाला नहीं होता। इस पर हम आगे के अध्यायों में विस्तार से बात करेंगे।

शुरुआत में होने वाली आम गलतियाँ

इस सवाल पर सोचते समय लोग अक्सर कुछ गलतियाँ कर बैठते हैं:

- **एक घटना से पूरा निष्कर्ष निकाल लेना।** एक प्रमोशन छूटने से यह मान लेना कि दुनिया में ईमानदारी बेकार है।
- **खुद को हमेशा पीड़ित मानना।** हर असफलता का दोष दूसरों पर डालने से सीखने का रास्ता बंद हो जाता है।
- **हर सफल व्यक्ति को बेईमान समझ लेना।** कई लोग मेहनत और ईमानदारी से भी आगे बढ़ते हैं। यह सोच हमें कड़वा बनाती है और सही लोगों को पहचानने से रोकती है।
- **जवाब की जल्दी करना।** कुछ सवाल एक शाम में नहीं सुलझते, और यह ठीक है।
- **अच्छाई को त्याग का दूसरा नाम मान लेना।** हर बार खुद को पीछे रखना अच्छाई नहीं, कई बार बस आदत होती है।

शुरू करने से पहले एक छोटी जाँच

अगले अध्याय पर जाने से पहले खुद से ये बातें पूछकर देखें और जो सच लगे, उस पर निशान लगाएँ:

- ☐ मैंने हाल में किसी बात पर "ना" कहना चाहा, पर कह नहीं पाया।
- ☐ मेरा काम अच्छा है, पर लोगों को उसकी जानकारी कम है।
- ☐ मैं अपनी तुलना अक्सर दूसरों की सबसे चमकदार तस्वीर से करता हूँ।
- ☐ मुझे कभी-कभी लगता है कि मेरी अच्छाई का फ़ायदा उठाया गया।

जितने निशान लगे, उतना समझिए कि यह किताब आपके अनुभव के करीब है। निशान कम हों तो भी पढ़ते रहिए, क्योंकि शायद आपके आसपास कोई रमेश है।

अध्याय 2: नैतिकता बनाम अवसरवाद

हम अक्सर नैतिकता और अवसरवाद को सीधे अच्छे और बुरे की लड़ाई की तरह देखते हैं। असल जिंदगी इतनी सीधी नहीं होती। दोनों के बीच एक लंबा धुंधला इलाका है, और ज्यादातर लोग अपनी रोज़ की जिंदगी वहीं बिताते हैं। फिर भी फर्क समझना जरूरी है, क्योंकि यही फर्क तय करता है कि हम किस तरह के इंसान बनेंगे।

सिद्धांतों पर चलने और मौके भुनाने का फर्क

सिद्धांत पर चलने वाला व्यक्ति फैसला लेने से पहले पूछता है, "क्या यह सही है?" अवसरवादी पूछता है, "इसमें मेरा क्या फायदा है?" सवाल छोटा-सा लगता है, पर इसका असर पूरे जीवन पर पड़ता है।

मौका देखकर कदम उठाना अपने-आप में गलत नहीं है। अगर किसी को अच्छी नौकरी का मौका मिलता है और वह मेहनत से उसे हासिल करता है, तो यह समझदारी है। अवसरवाद तब शुरू होता है जब फायदे के लिए सच, वादा, रिश्ता या दूसरे का हक कुर्बान कर दिया जाए।

दोनों सोच की तुलना

पहलू	सिद्धांतों पर चलने वाला	अवसरवादी
फैसले का आधार	सही-गलत	फायदा-नुकसान
वादे	मुश्किल हो तब भी निभाता है	जब तक काम आए, तब तक
रिश्ते	भरोसे पर टिके	जरूरत पर टिके
सच	असुविधाजनक हो तब भी बोलता है	माहौल देखकर बदलता है
नजर	लंबी अवधि	तुरंत का नतीजा
हार-जीत	कभी हारकर भी चैन से सोता है	जीतकर भी डर में रह सकता है

यह तालिका एक सरल खाका है। असली लोग कभी पूरी तरह एक खाने में नहीं आते। कोई ईमानदार इंसान भी कमजोर पल में स्वार्थी हो सकता है, और कोई चालाक आदमी भी कभी निस्वार्थ मदद कर सकता है।

अवसरवादी लोग कैसे सोचते और फैसले लेते हैं

अवसरवादी को समझना इसलिए जरूरी है कि हम उससे नफरत करने के बजाय उसकी चालें पहचान सकें। उनकी सोच में कुछ आम बातें दिखती हैं।

1. हर स्थिति को "सौदे" की तरह देखना

उनके लिए बातचीत, दोस्ती और मदद, सब कुछ लेन-देन है। वे मन ही मन हिसाब लगाते रहते हैं कि इस व्यक्ति से मुझे क्या मिलेगा। जब वह व्यक्ति उपयोगी नहीं रहता, तो उनका व्यवहार भी बदल जाता है।

2. नियम तब तक, जब तक सुविधा हो

अवसरवादी नियमों का सम्मान नहीं करते, वे उन्हें औजार समझते हैं। जहां नियम फायदा दे, वहां उसकी दुहाई देते हैं। जहां रुकावट बने, वहां "थोड़ा व्यावहारिक बनो" कहकर किनारे कर देते हैं।

3. अपने लिए बहाने तैयार रखना

वे अपने फैसलों को सही ठहराने की कला जानते हैं। "सब यही करते हैं," "मेरे पास और रास्ता नहीं था," "इसमें किसी का नुकसान थोड़ा है।" ये वाक्य उनके मन के बोझ को हल्का कर देते हैं। इंसान का दिमाग खुद को निर्दोष मानना चाहता है, इसलिए बहाने बनाना आसान होता है।

4. ताकतवर के साथ झुकाव

वे जल्दी भांप लेते हैं कि किसकी बात चलती है। इसलिए बॉस, नेता या प्रभावशाली रिश्तेदार के सामने उनका स्वर बदल जाता है। यही लोग कमजोर के सामने अक्सर रूखे होते हैं।

5. छोटे कदम, बड़ी फिसलन

कोई भी रातों-रात बेईमान नहीं बनता। पहले छोटी-सी बात छिपाई जाती है, फिर थोड़ा-सा झूठ, फिर एक बड़ा समझौता। हर कदम पिछले से थोड़ा ही आगे होता है, इसलिए गलत नहीं लगता।

सुझाव: किसी की नीयत जांचनी हो तो देखिए कि वह तब कैसा व्यवहार करता है जब उसे आपसे कुछ नहीं चाहिए। जरूरत के बिना का व्यवहार ही असली स्वभाव दिखाता है।

क्या हर समझौता अवसरवाद है?

नहीं। अगर हर समझौते को अवसरवाद कह दें, तो कोई भी इंसान, कोई परिवार और कोई दफ्तर नहीं चल पाएगा। रिश्तों में हम रोज़ झुकते हैं, पसंद छोड़ते हैं, बात टालते हैं। यह परिपक्वता है।

बीच की रेखा कहां है

समझौता और अवसरवाद का फर्क इन बातों से समझा जा सकता है:

सवाल	स्वस्थ समझौता	अवसरवाद
नुकसान किसका?	मेरा थोड़ा, ताकि सबका भला हो	दूसरे का, ताकि मेरा भला हो
पारदर्शिता	खुलकर बता सकता हूँ	छिपाना पड़ता है
मूल्य	मेरे मूल्य सुरक्षित रहते हैं	मूल्य टूटते हैं
अस्थायी या स्थायी	हालात के अनुसार, सोच-समझकर	आदत बनता जाता है

खुद को परखने के चार कदम

जब किसी फैसले को लेकर उलझन हो, तो ये कदम आजमाइए।

- रुकिए।** फैसला लेने से पहले कम से कम दस मिनट का समय लीजिए। जल्दबाजी में बहाने जीत जाते हैं।
- लिखिए।** कागज पर दो पंक्तियों में लिखिए कि आप क्या करने जा रहे हैं और क्यों।
- कसौटी लगाइए।** पूछिए कि अगर यह बात सबके सामने आ जाए, तो क्या मैं सिर उठाकर खड़ा रह सकूंगा?
- असर देखिए।** सोचिए कि इससे किसी का हक तो नहीं छिन रहा।

इसका कारण सीधा है। लिखने और रुकने से भावनाओं का शोर कम होता है और आपकी असली राय सामने आती है। जो बात मन में ठीक लगती है, वह कागज पर

अक्सर गलत दिखने लगती है।

एक रोज़मर्रा की मिसाल

मान लीजिए आपके दफ्तर में किसी साथी से गलती हुई और बॉस आपसे पूछता है। अगर आप गलती को बिना बढ़ाए, तथ्य बताते हैं और साथी के सुधार का मौका भी मांगते हैं, तो यह संतुलन है। अगर आप उसी मौके का इस्तेमाल उसे नीचा दिखाकर अपनी तरक्की के लिए करते हैं, तो यह अवसरवाद है। घटना एक ही है, फर्क नीयत और तरीके का है।

आखिर में

नैतिक होने का मतलब कठोर या अव्यावहारिक होना नहीं है। अवसरवादी होने का मतलब हमेशा चालाक और सफल होना भी नहीं है। असली फर्क यह है कि आपके फैसलों की जड़ में क्या है, मूल्य या सिर्फ फायदा।

सोचने वाले सवाल

1. पिछली बार आपने किस फैसले में फायदे के लिए अपने किसी सिद्धांत को ढीला किया था, और बाद में कैसा लगा?
2. क्या आपके आसपास कोई ऐसा व्यक्ति है जो रिश्तों को सौदे की तरह निभाता है? आपने यह कैसे पहचाना?
3. आपके लिए कौन-सी तीन बातें ऐसी हैं जिन पर आप कभी समझौता नहीं करेंगे?

4. कौन-से समझौते आपको परिपक्व बनाते हैं, और कौन-से भीतर से खोखला?

अवसरवादी के साथ रहना पड़े तो क्या करें

हर अवसरवादी से दूरी बनाना संभव नहीं होता। कई बार वह आपका सहकर्मी, रिश्तेदार या पड़ोसी होता है। ऐसे में कुछ व्यावहारिक आदतें काम आती हैं।

- **जरूरी बातें लिखित में रखिए।** काम का बंटवारा, वादे और समय-सीमा संदेश या ईमेल में दर्ज रहें, तो बाद में बात पलटना मुश्किल हो जाता है।
- **अपनी जानकारी सोच-समझकर बांटिए।** हर किसी को अपनी कमजोरी या योजना बताना जरूरी नहीं है।
- **श्रेय की बात समय पर कहिए।** अगर आपके काम का श्रेय कोई और ले रहा है, तो शांति से, तथ्यों के साथ उसी समय बताइए। महीनों बाद की शिकायत कमजोर पड़ जाती है।
- **बदले की भावना से बचिए।** उसके जैसा बन जाना जीत नहीं है। सीमा तय करना और बदला लेना दो अलग चीजें हैं।

अच्छे लोग यहां अक्सर गलती करते हैं

सिद्धांतों वाले लोग भी कुछ ऐसी भूलें करते हैं, जिनसे वे खुद को नुकसान पहुंचाते हैं।

1. **हर किसी को अपने जैसा मान लेना।** वे सोचते हैं कि सामने वाला भी वादा निभाएगा, इसलिए पहली चेतावनी को अनदेखा कर देते हैं।

2. **चुप रहने को शराफत समझना।** गलत बात पर टोकना बदतमीजी नहीं है।
चुप्पी को अक्सर सहमति मान लिया जाता है।
3. **अपना काम दिखाने में संकोच।** मेहनत करना जरूरी है, पर उसकी जानकारी सही लोगों तक पहुंचाना भी उतना ही जरूरी है। यह दिखावा नहीं, सूचना देना है।
4. **खुद को श्रेष्ठ समझने लगना।** जो ईमानदार व्यक्ति दूसरों को हर समय नीचा देखता है, वह लोगों को दूर कर देता है। नैतिकता का घमंड भी एक कमजोरी है।

एक और मिसाल: दुकान और उधार

मान लीजिए एक छोटे दुकानदार रमेश के पास दो ग्राहक हैं। पहला ग्राहक उधार लेता है और तय दिन पर लौटाता है। दूसरा बड़ी-बड़ी बातें करता है, उधार लेता है और फिर कतराने लगता है। रमेश को दूसरे ग्राहक से एक बार मोटा मुनाफा भी हुआ, पर बाद में पैसे अटक गए।

यहां सबक यह नहीं कि उधार देना गलत है। सबक यह है कि भरोसा तय करने का आधार व्यवहार का इतिहास होना चाहिए, मीठी बातें नहीं। नैतिक होने के साथ सतर्क रहना भी जरूरी है।

फैसले से पहले का त्वरित चेकलिस्ट

जांचने की बात	हां / नहीं
क्या मैं यही बात उस व्यक्ति के सामने कह सकता हूँ?	
क्या मैं कोई तथ्य छिपा रहा हूँ?	
क्या यह फैसला सिर्फ आज के फायदे के लिए है?	
क्या मैं इसे सही ठहराने के लिए बहाने गढ़ रहा हूँ?	

अगर दो या अधिक जवाब चिंताजनक लगें, तो एक बार फिर रुककर सोचिए।

अभ्यास के लिए सवाल

1. आपने कब किसी का अनुचित व्यवहार चुपचाप सह लिया, और उसका क्या नतीजा हुआ?
2. क्या आप अपने भरोसे की कसौटी व्यवहार को बनाते हैं या सिर्फ बातों को?

अध्याय 3: अच्छे लोगों की असफलता के असली कारण

अगर आप किसी भी दफ़्तर, परिवार या दोस्तों के समूह को ध्यान से देखें, तो एक बात बार-बार दिखती है। जो इंसान सबसे ज़्यादा भरोसेमंद होता है, वही अक्सर सबसे कम सुना जाता है। उसकी मेहनत सबको दिखती है, पर उसका नाम कहीं नहीं आता। इसकी वजह हमेशा दुनिया की बेईमानी नहीं होती। कई बार कारण हमारे अपने तौर-तरीकों में छिपा होता है। यह कहना कड़वा लग सकता है, पर इसे समझे बिना आगे बढ़ना मुश्किल है।

सीधापन, संकोच और अपनी बात न रख पाना

सीधापन और समझदारी का फ़र्क़

सीधा होना एक गुण है। पर जब सीधापन बिना सोचे-समझे बोलने या बिना जाँचे भरोसा करने में बदल जाए, तब वह नुकसान करता है। अच्छा इंसान मान लेता है कि सामने वाला भी उसी की तरह सोच रहा होगा। इसलिए वह अपनी योजना, अपनी कमज़ोरी और अपने इरादे बिना झिझक बता देता है। चालाक आदमी इन जानकारीयों का इस्तेमाल अपने फ़ायदे के लिए कर लेता है।

संकोच की क्रीमत

संकोच अक्सर विनम्रता के कपड़े पहनकर आता है। मीटिंग में आपके पास बेहतर विचार था, पर आपने सोचा, "कोई और बोल देगा।" फिर किसी और ने वही बात थोड़े आत्मविश्वास से कह दी और श्रेय ले गया। इसमें उसकी चालाकी कम थी, आपकी चुप्पी ज़्यादा थी।

संकोच के कुछ आम रूप ये हैं:

- तनख्वाह या ज़िम्मेदारी पर बात करने से बचना
- ग़लत बात पर भी मुस्कुराकर टाल देना
- अपने काम का ज़िक्र करना "शेखी" लगाना
- "ना" कहने से डरना कि लोग बुरा मान जाएँगे

अपनी बात रखने का सरल अभ्यास

अपनी बात रखना कोई जन्मजात हुनर नहीं है। इसे अभ्यास से सीखा जा सकता है। इन क़दमों को आज़माएँ:

1. किसी भी अहम बातचीत से पहले अपनी मुख्य बात एक या दो वाक्यों में लिख लें।
2. बातचीत में पहले पाँच मिनट के भीतर वह बात कह दें, अंत के लिए न छोड़ें।
3. अपनी बात "मुझे लगता है कि..." या "मेरी राय में..." से शुरू करें, ताकि स्वर शांत रहे।
4. जवाब का इंतज़ार करें और बीच में सफ़ाई देना शुरू न करें।

5. हफ्ते में कम से कम एक बार किसी छोटे मुद्दे पर साफ़ "ना" कहने का अभ्यास करें।

क्यों कारगर है: जब बात पहले से स्पष्ट होती है, तो घबराहट में हम उसे घुमाते नहीं। छोटे मुद्दों पर अभ्यास करने से बड़े मौक़े पर आवाज़ काँपती नहीं।

सुझाव: किसी पर अपनी बात थोपने की ज़रूरत नहीं है। लक्ष्य सिर्फ़ इतना है कि आपकी बात कमरे में मौजूद रहे।

अच्छाई को कमज़ोरी बना लेने वाली आदतें

अच्छाई अपने आप में कमज़ोरी नहीं है। कमज़ोरी तब बनती है जब उसके साथ कुछ आदतें जुड़ जाती हैं। इन आदतों को पहचानना ज़रूरी है।

हर किसी को ख़ुश रखने की आदत

जो इंसान सबको ख़ुश रखना चाहता है, वह आख़िर में किसी को पूरी तरह ख़ुश नहीं कर पाता, और ख़ुद थक जाता है। लोग धीरे-धीरे उसकी हाँ को अधिकार समझने लगते हैं। फिर एक दिन उसके "ना" कहने पर हैरान होकर शिकायत करते हैं।

हिसाब न रखना और जताना भी नहीं

आप किसी की मदद करते हैं, पर कभी उसका ज़िक्र नहीं करते। यह बड़प्पन है। मगर अगर आपका योगदान किसी को पता ही न हो, तो उसकी कद्र भी नहीं होगी।

अपना काम शांति से, पर साफ़ शब्दों में सामने रखना घमंड नहीं है।

बिना सीमा के मदद करना

जो हमेशा उपलब्ध रहता है, उसकी उपलब्धता की कोई कीमत नहीं रह जाती। सीमा न होने पर मदद बोझ बन जाती है, और बोझ से मन में कड़वाहट पैदा होती है।

अच्छाई और कमज़ोरी की तुलना

पहलू	समझदार अच्छाई	कमज़ोरी बनी अच्छाई
मदद करना	अपनी क्षमता देखकर	मना न कर पाने की वजह से
चुप रहना	सोच-समझकर चुनी हुई चुप्पी	डर के कारण चुप्पी
माफ़ करना	सबक़ के साथ	बार-बार वही चोट सहकर
भरोसा करना	समय के साथ परखकर	तुरंत और आँख मूँदकर

सुझाव: किसी भी अनुरोध पर तुरंत हाँ न कहें। "मैं देखकर बताता/बताती हूँ" कहने से सोचने का समय मिल जाता है।

कब हार वास्तव में हार नहीं होती

हर बार जब कोई चालाक आदमी आगे निकल जाता है, तो उसे आपकी हार मान लेना जल्दबाज़ी होगी। कई बार जो हार दिखती है, वह दूसरी तरह की जीत होती है।

जब आपने अपनी शर्त पर फ़ैसला किया

मान लीजिए आपने एक पदोन्नति इसलिए छोड़ दी क्योंकि उसके लिए झूठी रिपोर्ट बनानी पड़ती। बाहर से यह नुकसान दिखता है। पर आपने अपनी रातों की नींद, अपनी पहचान और अपना भरोसा बचा लिया। यह क़ीमत छोटी नहीं है।

जब नतीजा देर से आता है

भरोसा धीरे बनता है। जो काम ईमानदारी से किया गया हो, उसका असर अक्सर लंबे समय में दिखता है। लोग समय के साथ पहचान लेते हैं कि किस पर टिककर चला जा सकता है।

जब हार से सीख मिले

अगर किसी धोखे के बाद आप ज़्यादा सावधान और समझदार बने हैं, तो वह अनुभव भी कमाई है। हार तब असली बनती है जब आप उससे कुछ सीखे बिना उसी जगह लौट जाएँ।

फिर भी यह मान लेना कि "हर हार असल में जीत है" खुद को बहलाना होगा। ईमानदारी का मतलब अपने नुकसान को भी साफ़ देखना है।

सोचने वाले सवाल

1. पिछली बार कब आपने कुछ कहना चाहा, पर संकोच में चुप रह गए? उसका नतीजा क्या हुआ?
2. आपकी कौन-सी अच्छी आदत दूसरों के लिए आपका फ़ायदा उठाना आसान बना देती है?
3. जिसे आप अपनी हार मानते हैं, उसमें आपने क्या खोया और क्या बचाया?
4. इस हफ़्ते आप कौन-सी एक छोटी सीमा तय कर सकते हैं?

एक वास्तविक-सा उदाहरण: रमेश और टीम की रिपोर्ट

रमेश एक निजी कंपनी में लेखा विभाग में काम करता था। हर महीने की रिपोर्ट वही तैयार करता, आँकड़े जाँचता और गलतियाँ सुधारता। मीटिंग में रिपोर्ट उसका सहकर्मी प्रस्तुत करता था, क्योंकि रमेश को मंच पर खड़े होना असहज लगता था। साल के अंत में तारीफ़ प्रस्तुत करने वाले को मिली।

रमेश ने इसे किस्मत का खेल मान लिया। पर असल बात यह थी कि उसने कभी अपने काम का ज़िक्र ही नहीं किया। जब उसने अगली बार रिपोर्ट के साथ एक छोटा नोट जोड़ा कि "इस महीने मैंने तीन विसंगतियाँ पकड़ीं और सुधारीं", तो बात बदलने लगी। उसने किसी को नीचा नहीं दिखाया, बस तथ्य सामने रखे।

इस उदाहरण से सीख यह है कि हर बार दोष दूसरों का नहीं होता, और हर बार हमारा भी नहीं। दोनों पहलुओं को देखना ज़रूरी है।

आम गलतियाँ जो अच्छे लोग दोहराते हैं

- **उम्मीद को अनकहा रखना:** हम मान लेते हैं कि लोग बिना कहे समझ जाएँगे कि हमें क्या चाहिए।
- **शिकायत को मन में जमा करना:** छोटी बातें दबाते रहते हैं और फिर एक दिन अचानक फट पड़ते हैं, जिससे दूसरे हमें ही गलत समझते हैं।
- **हर चालाक इंसान को बुरा मान लेना:** हर आत्मविश्वासी व्यक्ति धूर्त नहीं होता। कुछ लोग बस अपनी बात रखना जानते हैं, और यह हम उनसे सीख सकते हैं।
- **खुद को पीड़ित की भूमिका में बाँध लेना:** लगातार "मेरे साथ ही ऐसा होता है" सोचने से हम अपने हाथ की संभावनाएँ देखना बंद कर देते हैं।
- **सलाह लेने में गलत लोग चुनना:** जिन्हें हमारी तरक्की से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, उनसे राय लेकर हम भ्रमित होते हैं।

सही और ग़लत सावधानी में फ़र्क़

स्थिति	अति-भरोसा	अति-शक	संतुलित रास्ता
नया सहकर्मी	सारी योजनाएँ बता देना	किसी से बात ही न करना	काम की बात साझा करना, निजी बातें धीरे-धीरे
पैसे का लेन-देन	बिना लिखे उधार देना	किसी की मदद न करना	जितना खो सकें उतना ही देना, बात साफ़ रखना
श्रेय की बात	चुप रहना	हर बात पर दावा करना	अपना योगदान तथ्य के साथ बताना

एक छोटी जाँच-सूची

हफ़्ते के अंत में खुद से ये बातें पूछ लें:

1. क्या मैंने इस हफ़्ते कम से कम एक बार अपनी राय साफ़ कही?
2. क्या मैंने कोई ऐसी हाँ कही, जो असल में ना होनी चाहिए थी?
3. क्या मेरे किसी काम का ज़िक्र उचित जगह पर हुआ?
4. क्या मैंने किसी पर भरोसा करने से पहले उसे थोड़ा परखा?
5. क्या मैंने अपने लिए थोड़ा समय बचाया?

सुझाव: इन सवालों के जवाब किसी डायरी में दो पंक्तियों में लिख लें। कुछ हफ्तों बाद आपको अपना पैटर्न साफ़ दिखने लगेगा, और बदलाव की दिशा भी।

सोचने वाले अतिरिक्त सवाल

1. आपके आसपास कौन है जो बिना चालाकी के भी अपनी बात असरदार तरीके से रखता है? उससे आप क्या सीख सकते हैं?
2. क्या आप कभी खुद उस इंसान की चुप्पी का फ़ायदा उठाते हैं, जो अपनी बात नहीं कहता?

अध्याय 4: रिश्तों में स्वार्थ का चेहरा

जरूरत पर बने रिश्ते और बिना शर्त रिश्ते

हम सब किसी न किसी जरूरत से रिश्ते बनाते हैं। दोस्त से बातचीत की जरूरत होती है, सहकर्मी से काम की, पड़ोसी से मदद की। इसमें कोई बुराई नहीं है। परेशानी तब शुरू होती है जब रिश्ता सिर्फ जरूरत पर टिका हो और जरूरत खत्म होते ही सामने वाला गायब हो जाए।

ईमानदार और भले लोग अक्सर यहीं धोखा खाते हैं। वे हर रिश्ते को अपने पैमाने पर तौलते हैं। उन्हें लगता है कि जो वे निभा रहे हैं, सामने वाला भी वैसा ही निभा रहा होगा। पर ऐसा हमेशा नहीं होता।

दोनों में बुनियादी फर्क

पहलू	जरूरत पर बना रिश्ता	बिना शर्त वाला रिश्ता
संपर्क कब होता है	जब कोई काम हो	बिना काम के भी
मुश्किल समय में	बहाने, दूरी	साथ खड़ा रहना
आपकी सफलता पर	जलन या चुप्पी	सच्ची खुशी
"ना" सुनने पर	नाराजगी, ताने	समझ और सम्मान
लेन-देन	एकतरफा	आपसी, बिना हिसाब के

ध्यान रहे, बिना शर्त का मतलब यह नहीं कि कोई सीमा ही न हो। इसका मतलब है कि प्रेम और सम्मान आपकी उपयोगिता पर निर्भर नहीं करता। सच्चे रिश्ते में भी सीमाएँ होती हैं, और वे रिश्ते को मजबूत ही करती हैं।

देने वाले का इस्तेमाल कैसे होता है

जो इंसान हमेशा मदद के लिए तैयार रहता है, वह स्वार्थी लोगों के लिए सबसे आसान ठिकाना बन जाता है। यह इस्तेमाल अक्सर धीरे-धीरे और बहुत सभ्य तरीके से होता है।

आम तरीके

- **छोटी माँगों से शुरुआत:** पहले छोटी मदद, फिर थोड़ी बड़ी, फिर उसे अधिकार मान लेना।
- **तारीफ का जाल:** "तुम जैसा कोई नहीं", "बस तुम ही कर सकते हो", जबकि असली मकसद काम निकलवाना होता है।
- **अपराध-बोध जगाना:** "मैंने तो तुम्हें अपना माना था", "तुम भी बदल गए"।
- **श्रेय खुद लेना:** मेहनत आपकी, नाम उनका।
- **आपकी अच्छाई को कमजोरी समझना:** आप मना नहीं करेंगे, यह मानकर चलना।

एक उदाहरण लीजिए। रमेश दफ्तर में सबका काम संभाल लेता था। कोई देर तक रुकने को कहे, तो वही रुकता। तरक्की की बात आई तो उसके सहकर्मी का नाम आगे बढ़ा, क्योंकि वह "मिलनसार और दिखने वाला" था। रमेश को बुरा लगा, पर

उसने किसी से कुछ नहीं कहा। असल दिक्कत यह थी कि उसने अपनी मेहनत को कभी दिखाया ही नहीं और न ही अपनी सीमा बताई।

यह इतना आसान क्यों होता है?

इसका कारण यह है कि भले लोग टकराव से बचना चाहते हैं। वे सोचते हैं कि मना करने से रिश्ता बिगड़ जाएगा। स्वार्थी व्यक्ति इस डर को पहचान लेता है और उसी का फायदा उठाता है। जब तक आप कीमत नहीं माँगते, उन्हें कीमत चुकाने की जरूरत महसूस नहीं होती।

स्वार्थी रिश्तों के शुरुआती संकेत पहचानना

संकेत शुरू में ही दिख जाते हैं, बस हम उन्हें नजरअंदाज कर देते हैं। इन्हें पहचानने का एक सरल अभ्यास है।

चार हफ्ते का अवलोकन

किसी संदिग्ध रिश्ते को परखने के लिए ये कदम आजमाइए:

1. **एक छोटी डायरी या फोन-नोट बनाइए।** चार हफ्ते तक हर बार लिखिए कि संपर्क किसने शुरू किया।
2. **हर माँग दर्ज कीजिए।** तारीख और माँग का प्रकार लिखिए, जैसे पैसा, समय, सिफारिश या सलाह।
3. **अपनी जरूरत का एक मौका परखिए।** कोई छोटी, उचित मदद माँगिए, जैसे दस मिनट की बात या एक छोटा काम।

4. चौथे हफ्ते के अंत में गिनती कीजिए। देखिए कि कितनी बार आपने दिया और कितनी बार मिला।

यह क्यों काम करता है? भावनाओं में हम अक्सर सिर्फ अपने अच्छे इरादे याद रखते हैं। लिखा हुआ रिकॉर्ड पैटर्न दिखा देता है। अगर दस में से आठ बार संपर्क सिर्फ तब हुआ जब उन्हें कुछ चाहिए था, तो तस्वीर साफ है।

सुझाव: एक-दो घटनाओं पर निष्कर्ष मत निकालिए। किसी का बुरा दिन भी हो सकता है। फैसला पैटर्न देखकर कीजिए, एक घटना देखकर नहीं।

आम चेतावनी संकेत

- आपकी बात सुनने में दिलचस्पी नहीं, पर अपनी बात लंबी चलती है।
- आपकी मुश्किल में "अभी व्यस्त हूँ" का जवाब।
- आपकी "ना" पर नाराजगी या चुप्पी।
- दूसरों के सामने आपकी मदद का जिक्र न करना।
- वादे बड़े, निभाने की गति धीमी।

संकेत मिलें तो तुरंत रिश्ता तोड़ना जरूरी नहीं। पहले साफ और शांत शब्दों में अपनी बात रखिए: "इस बार मैं नहीं कर पाऊँगा।" इसके बाद सामने वाले की प्रतिक्रिया देखिए। वही आपको सबसे सच्चा जवाब देगी।

अगर रिश्ते में पैसों का बड़ा लेन-देन या कानूनी मामला जुड़ा हो, तो किसी योग्य विशेषज्ञ से सलाह जरूर लीजिए।

सोचने वाले सवाल

1. मेरे जीवन में ऐसे कौन-से रिश्ते हैं जहाँ मैं हमेशा देने वाला हूँ?
2. क्या मैंने कभी अपनी सीमा साफ शब्दों में बताई है, या सिर्फ उम्मीद की कि सामने वाला समझ जाएगा?
3. मुझे "ना" कहने में सबसे ज्यादा डर किस बात का लगता है?
4. क्या मैं खुद भी किसी के लिए सिर्फ जरूरत के समय याद आने वाला इंसान हूँ?
5. मेरे सबसे सच्चे रिश्ते कौन-से हैं, और मैं उन्हें कितना समय देता हूँ?

"ना" कहने के सही और गलत तरीके

सीमा बताना एक कौशल है, और इसे सीखा जा सकता है। कई भले लोग या तो बहुत देर तक चुप रहते हैं, या फिर गुस्से में एक साथ सब कह देते हैं। दोनों ही तरीके रिश्ते को नुकसान पहुँचाते हैं।

स्थिति	कमजोर तरीका	संतुलित तरीका
समय माँगा गया	"अच्छा, देखता हूँ..." (और फिर टालते रहना)	"आज शाम नहीं हो पाएगा, शनिवार को आधा घंटा दे सकता हूँ।"
पैसे माँगे गए	झूठा बहाना बनाना	"इस बार मैं उधार नहीं दे पाऊँगा।"
काम का बोझ डाला गया	चुपचाप सह लेना और मन में कड़वाहट रखना	"मेरे पास अपना काम पहले से है, इसे बाँट लेते हैं।"

ध्यान दीजिए कि संतुलित तरीके में लंबी सफाई नहीं है। जितनी ज्यादा सफाई, उतनी ज्यादा बहस की गुंजाइश।

एक और उदाहरण: सुनीता और उसकी सहेली

सुनीता की एक पुरानी सहेली थी। जब भी उसे नौकरी, घर या रिश्तेदारों की परेशानी होती, वह घंटों फोन पर बात करती और सुनीता सुनती रहती। जब सुनीता के पिता बीमार पड़े, तो सहेली ने एक संदेश भेजा, "ध्यान रखना", और फिर हफ्तों कोई खबर नहीं ली।

सुनीता को दुख हुआ, पर उसने सहेली को दोषी ठहराने के बजाय अपनी उम्मीद साफ की। उसने कहा, "इन दिनों मुझे भी किसी से बात करने की जरूरत है।" सहेली की प्रतिक्रिया से बात समझ आ गई। उसने बहाने बनाए और बातचीत कम

हो गई। सुनीता ने रिश्ता खत्म नहीं किया, बस उससे उम्मीदें घटा दीं और अपनी ऊर्जा उन लोगों को दी जो सचमुच साथ थे।

भले लोगों की आम गलतियाँ

- **हिसाब न रखना और फिर अचानक फट पड़ना:** सालों चुप रहकर एक दिन सारी शिकायतें एक साथ कह देना।
- **हर किसी को एक जैसा समझना:** जो भरोसे के लायक है और जो नहीं, दोनों को बराबर पहुँच देना।
- **बदले की उम्मीद छिपाकर मदद करना:** फिर उम्मीद टूटने पर कटुता आ जाती है। मदद तभी दीजिए जब आप बिना लौटाए भी सहज रह सकें।
- **खुद को हर रिश्ते का रक्षक मानना:** रिश्ता दोनों तरफ से चलता है। अकेले उसे ढोने की कोशिश थका देती है।
- **दूसरों के सामने सब कुछ बताना:** अपनी निजी कमजोरियाँ हर किसी को बताने से वे हथियार बन सकती हैं।

रिश्ता परखने की त्वरित सूची

किसी भी रिश्ते के बारे में खुद से ये बातें पूछिए:

1. क्या मैं इस इंसान के सामने जैसा हूँ, वैसा ही रह पाता हूँ?
2. क्या मेरी "ना" के बाद भी हमारी बातचीत सामान्य रहती है?
3. क्या यह इंसान मेरी छोटी-छोटी बातें भी याद रखता है?

4. क्या मैं इससे मिलने के बाद हल्का महसूस करता हूँ या थका हुआ?

5. क्या मेरी मेहनत को यह दूसरों के सामने स्वीकार करता है?

अगर तीन या उससे ज्यादा जवाब "नहीं" हों, तो रिश्ते में संतुलन के बारे में गंभीरता से सोचने का समय है। इसका मतलब रिश्ता तोड़ना नहीं, बल्कि उसमें अपनी जगह और अपनी सीमाएँ दोबारा तय करना है।

सोचने वाले कुछ और सवाल

1. मैंने पिछली बार किसी को बिना सफाई दिए "ना" कब कहा था?

2. कौन-सा रिश्ता मुझे थका देता है, फिर भी मैं उसे निभाता जा रहा हूँ? क्यों?

अध्याय 5: पैसा और प्रतिष्ठा का दबाव

शादी के एक कार्ड पर नज़र डालिए। उसमें दूल्हे की नौकरी, गाड़ी और घर का ज़िक्र भले न हो, पर मेहमानों की बातचीत में यही तीन चीज़ें घूमती रहती हैं। "लड़का क्या करता है? कितना कमाता है? अपना मकान है या किराए का?" इन सवालोंने में चरित्र, स्वभाव और ईमानदारी की जगह बहुत कम बचती है। यहीं से पैसा और प्रतिष्ठा का दबाव शुरू होता है, जो चुपचाप हमारे फैसलों को बदल देता है।

समाज सफलता को कैसे नापता है

समाज के पास सफलता मापने का कोई सूक्ष्म पैमाना नहीं है। उसे ऐसी चीज़ें चाहिए जो दिख जाएँ और जिनकी तुलना हो सके। वेतन, पद, गाड़ी, मकान, कपड़े और छुट्टियों की तस्वीरें, ये सब आसानी से गिने जा सकते हैं। ईमानदारी, धैर्य या मन की शांति को गिनना मुश्किल है, इसलिए वे गिनती से बाहर रह जाती हैं।

दिखने वाली और न दिखने वाली सफलता

पैमाना	समाज की नज़र में	असल में क्या छूट जाता है
आमदनी	जितनी ज़्यादा, उतना सफल	कमाई का तरीका कैसा था
पद	बड़ा पद, बड़ा आदमी	पद तक पहुँचने की कीमत
घर-गाड़ी	मेहनत का सबूत	कर्ज़ और तनाव
रिश्तेदारों में चर्चा	प्रतिष्ठा	अपनी असली खुशी

इस तालिका से एक बात साफ़ होती है। समाज नतीजा देखता है, रास्ता नहीं। इसलिए जो व्यक्ति सही रास्ते से धीरे चल रहा है, वह अक्सर "पिछड़ा हुआ" मान लिया जाता है। वहीं शॉर्टकट से पहुँचा व्यक्ति तालियाँ बटोरता है, जब तक उसका राज़ खुल न जाए।

दिखावे की दौड़ में ईमानदारी पर असर

दिखावा अकेला नहीं आता। वह तुलना के साथ आता है। पड़ोसी ने नई गाड़ी ली तो हमें अपनी पुरानी गाड़ी छोटी लगने लगती है, जबकि वह चल बिल्कुल ठीक रही थी। यह छोटी-सी बेचैनी धीरे-धीरे बड़े समझौतों की ज़मीन तैयार करती है।

छोटे समझौते, बड़ा असर

ईमानदारी आमतौर पर एक झटके में नहीं टूटती। वह टुकड़ों में खिसकती है। पहले एक झूठ, "अरे, हमारी तो बात चल रही है उस कंपनी से।" फिर एक बढ़ा-चढ़ाकर

बताया गया आँकड़ा। फिर किसी का श्रेय अपने नाम कर लेना। हर कदम अपने आप में मामूली लगता है, पर इनका जोड़ आदमी को वह बना देता है जो वह कभी नहीं बनना चाहता था।

दिखावे की एक और कीमत है। जब हम अपनी हैसियत से ऊपर जीने लगते हैं, तो कर्ज़ लेते हैं, और कर्ज़ चुकाने का दबाव हमें उन चीज़ों के लिए भी राज़ी कर देता है जिनके लिए हम पहले कभी तैयार न होते। रिश्तत, झूठी रसीद या किसी की ग़लती पर आँख मूँद लेना, इन सबकी जड़ अक्सर इसी दबाव में मिलती है।

अपने भीतर की जाँच

एक आसान अभ्यास आजमाइए, जिसमें बस दस मिनट लगेंगे।

1. पिछले तीन महीने के पाँच बड़े खर्च कागज़ पर लिखिए।
2. हर खर्च के आगे लिखिए: "यह ज़रूरत थी या दूसरों को दिखाने के लिए?"
3. जो खर्च दिखावे के थे, उनके सामने एक निशान लगाइए।
4. देखिए कि निशान कितने हैं और उनका बोझ आपकी जेब या मन पर कितना पड़ा।

यह अभ्यास इसलिए काम करता है कि हम अपनी आदतों को तब तक नहीं पहचानते जब तक उन्हें सामने लिखा हुआ न देखें। लिखते ही बहाने कमज़ोर पड़ने लगते हैं।

सुझाव: किसी भी बड़ी ख़रीद से पहले 48 घंटे रुकिए। अगर दो दिन बाद भी चीज़ ज़रूरी लगे, तभी सोचिए। अक्सर दिखावे की चाह इतने समय में ठंडी पड़ जाती है।

आर्थिक कमज़ोरी और नैतिक दृढ़ता की चुनौती

यहाँ एक बात ईमानदारी से मान लेनी चाहिए। जिसके पास पर्याप्त पैसा है, उसके लिए "ना" कहना आसान होता है। जिसके घर में बच्चों की फ़ीस, माँ की दवा और किराए का हिसाब सिर पर खड़ा हो, उसके लिए उसूल निभाना कठिन है। इसे कमज़ोरी कहकर ख़ारिज करना ठीक नहीं। यह इंसानी हालात की सच्चाई है।

मान लीजिए रमेश एक छोटी फ़र्म में अकाउंटेंट है। मालिक उससे कहता है कि एक बिल की तारीख़ बदल दे। मना करने पर नौकरी जा सकती है, और घर की किस्तें सामने हैं। यहाँ सही और ग़लत का सवाल सीधा है, पर उसकी कीमत बहुत भारी है। ऐसे मौक़ों पर लोग अक्सर अकेले पड़ जाते हैं, क्योंकि समझाने वाले बहुत हैं, साथ खड़े होने वाले कम।

कमज़ोर हालात में दृढ़ रहने के व्यावहारिक तरीके

पहला, एक छोटा आपात कोष बनाइए। अपनी मासिक ज़रूरत का जितना हिस्सा बचा सकें, धीरे-धीरे जोड़ते जाइए। यह आपको "ना" कहने की ताक़त देता है, क्योंकि डर थोड़ा कम हो जाता है। निवेश या बचत की ठोस योजना के लिए किसी योग्य वित्तीय सलाहकार से परामर्श लेना बेहतर होगा।

दूसरा, अपनी कौशल-क्षमता बढ़ाते रहिए। जिसके पास हुनर है, उसके पास विकल्प हैं, और विकल्प ही नैतिक आज़ादी की असली पूँजी है।

तीसरा, अपनी सीमाएँ पहले से तय कीजिए। जब आप पहले से जानते हैं कि कौन-सा काम कभी नहीं करेंगे, तो दबाव के क्षण में सोचना नहीं पड़ता।

सुझाव: अपनी तीन "न टूटने वाली रेखाएँ" एक डायरी में लिख लीजिए। मुश्किल घड़ी में उन्हें पढ़ना फ़ैसला आसान कर देता है।

आखिर में एक बात

पैसा ज़रूरी है, इसमें कोई शक नहीं। प्रतिष्ठा भी मायने रखती है। पर जब ये दोनों हमारे मूल्यों से बड़े हो जाते हैं, तब हम जीतते हुए भी कुछ खोने लगते हैं। असली सवाल यह नहीं कि पैसा कमाएँ या नहीं, बल्कि यह है कि उसकी कीमत क्या चुका रहे हैं।

सोचने वाले सवाल

1. आप अपनी सफलता को किस पैमाने से नापते हैं, और वह पैमाना किसने तय किया?
2. पिछली बार आपने कब सिर्फ़ दूसरों को दिखाने के लिए कुछ किया या ख़रीदा?

3. अगर आपकी आर्थिक स्थिति आज से दोगुनी मज़बूत होती, तो कौन-से फ़ैसले आप अलग लेते?
4. आपकी वे कौन-सी तीन रेखाएँ हैं जिन्हें आप किसी हाल में पार नहीं करेंगे?
5. क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो कम पैसे में भी सम्मान से जी रहा है? उससे आप क्या सीख सकते हैं?

प्रतिष्ठा के नाम पर होने वाली आम ग़लतियाँ

प्रतिष्ठा का दबाव हमें कुछ ऐसी ग़लतियों की ओर धकेलता है जो उस समय समझदारी लगती हैं। इनमें से कुछ को पहचान लेना आधी लड़ाई जीतने जैसा है।

- **हर रिश्तेदार की नज़र में अच्छा बनने की कोशिश।** यह संभव ही नहीं है, और इसमें हम अपने ही लोगों के लिए समय और धैर्य खो देते हैं।
- **शादी या त्योहार पर हैसियत से ज़्यादा ख़र्च।** कुछ घंटों की वाहवाही के बदले सालों की किस्तें रह जाती हैं।
- **दूसरों की सोशल मीडिया तस्वीरों को पूरी सच्चाई मान लेना।** लोग अपनी ज़िंदगी का सबसे चमकदार हिस्सा दिखाते हैं, पूरा हिसाब नहीं।
- **ईमानदार इंसान को "बेवकूफ़" समझ लेना।** यह सोच धीरे-धीरे हमें भी वैसा ही बनने के लिए राज़ी कर देती है।
- **कर्ज़ को "आज की ज़रूरत" कहकर टालना।** कर्ज़ का बोझ अक्सर फ़ैसले की आज़ादी छीन लेता है।

एक और उदाहरण: सुनीता की सादगी

सुनीता एक सरकारी स्कूल में शिक्षिका हैं। उनके मोहल्ले में कई लोग ट्यूशन से अच्छी कमाई करते हैं, और कुछ अभिभावक उन पर भी दबाव डालते थे कि वे कक्षा में कम पढ़ाएँ और बच्चों को ट्यूशन के लिए बुलाएँ। रिश्तेदार कहते थे, "इतने सालों में एक गाड़ी भी नहीं ली?"

सुनीता ने ट्यूशन का वह रास्ता नहीं चुना। उनकी गाड़ी देर से आई, और घर भी छोटा रहा। पर उनके पढ़ाए बच्चे आज भी उन्हें याद करते हैं और कई बार मिलने आते हैं। यहाँ बात यह नहीं कि सादगी हमेशा फ़ायदे में बदलती है। बात यह है कि उन्हें रात को चैन की नींद आती है, और अपने फ़ैसले पर सफ़ाई नहीं देनी पड़ती। समाज की तालिका में यह चीज़ दर्ज नहीं होती, पर जीने में इसका बड़ा हाथ होता है।

दबाव के क्षण के लिए त्वरित जाँच-सूची

जब भी पैसे या प्रतिष्ठा के कारण कोई समझौता करने का मन हो, खुद से ये सवाल पूछिए:

सवाल	क्यों ज़रूरी है
क्या मैं यह काम खुलकर सबको बता सकता हूँ?	छिपाने की ज़रूरत अक्सर ग़लत होने का संकेत होती है
पाँच साल बाद इस फ़ैसले को कैसे देखूँगा?	तुरंत के दबाव से दूरी बनती है
क्या इसका नुकसान किसी और को होगा?	हमारा चुनाव दूसरों तक पहुँचता है
क्या कोई और रास्ता है, भले ही धीमा हो?	मजबूरी कई बार केवल जल्दबाज़ी होती है
क्या यह मेरी ज़रूरत है या दूसरों की उम्मीद?	इच्छा और दबाव का फ़र्क़ साफ़ होता है

सुझाव: किसी भरोसेमंद दोस्त या परिवार के सदस्य से अपनी उलझन साझा कीजिए। बोलकर कहने से बात अक्सर ज़्यादा साफ़ दिखने लगती है।

एक छोटा अभ्यास और

इस हफ़्ते किसी एक मौके पर, जब आप दिखावे की ओर झुकें, उसे हल्के से टाल दीजिए। चाहे वह महँगा तोहफ़ा हो, बेवजह की दावत या किसी बहस में जीतने की

ज़िद। बाद में नोट कीजिए कि आपको कैसा महसूस हुआ। यह छोटा प्रयोग दिखाता है कि प्रतिष्ठा का दबाव जितना बड़ा लगता है, उतना हमेशा होता नहीं।

अध्याय 6: सत्ता और प्रभाव का खेल

सत्ता कहीं बाहर नहीं, हमारे आसपास ही चलती है

सत्ता सुनते ही हम संसद, मंत्री या बड़े उद्योगपति सोचने लगते हैं। असल में सत्ता का खेल सबसे पहले वहीं शुरू होता है जहाँ हम रोज़ जाते हैं: दफ्तर की मीटिंग, मोहल्ले की समिति, स्कूल का प्रबंधन या किसी संस्था का चुनाव। जहाँ कुछ लोगों के हाथ में फैसले लेने की ताकत होती है, वहाँ प्रभाव का खेल अपने आप चलने लगता है।

प्रभाव का मतलब है, "आपकी बात कितनी सुनी जाती है।" कई बार यह पद से आता है, और कई बार भरोसे, रिश्तों और पहुँच से। ईमानदार लोग अक्सर मान लेते हैं कि अच्छा काम अपने आप दिख जाएगा। यही सोच उन्हें पीछे छोड़ देती है।

दफ्तर, राजनीति और संस्थाओं में पहुँच की भूमिका

दफ्तर में

दफ्तर में फैसले अक्सर मीटिंग के कमरे में नहीं, उससे पहले चाय की टेबल या गलियारे की बातचीत में हो जाते हैं। प्रमोशन की सूची बनाने वाले को आपका नाम याद होना चाहिए। अगर आपने साल भर बढ़िया काम किया पर बॉस को पता ही नहीं, तो आपका काम आपके लिए नहीं बोलेंगा।

राजनीति में

राजनीति में पहुँच और भी खुलकर दिखती है। टिकट, पद और योजनाओं का लाभ अक्सर इस पर टिकता है कि आप किसके नज़दीक हैं। यहाँ भी योग्य व्यक्ति इसलिए पिछड़ता है कि वह "किसी के साथ" नहीं दिखता।

संस्थाओं में

स्कूल, अस्पताल, क्लब या सहकारी समिति जैसी संस्थाओं में एक छोटा समूह अक्सर सारे फैसले अपने पास रखता है। नए या बाहरी व्यक्ति को जगह तभी मिलती है जब वह इस समूह की नज़र में आ जाए।

योग्यता बनाम जान-पहचान

दोनों में से किसी एक को पूरी तरह सही या गलत कहना आसान है, पर सच बीच में है। नीचे तुलना देखिए।

पहलू	योग्यता	जान-पहचान
ताकत	काम की गुणवत्ता, भरोसेमंद नतीजे	अवसर तक जल्दी पहुँच, सिफारिश
कमज़ोरी	दिखाई न देना, अनदेखा रह जाना	काम कमज़ोर हो तो देर-सबेर पोल खुलती है
असर	लंबे समय में टिकाऊ साख	शुरुआत में तेज़ बढ़त
जोखिम	मौका मिले बिना प्रतिभा बेकार	पक्षपात का आरोप, भरोसा टूटना

एक उदाहरण

मान लीजिए एक दफ्तर में दो सहकर्मी हैं, रमेश और अनिल। रमेश सटीक काम करता है, पर किसी से ज़्यादा बात नहीं करता और अपनी उपलब्धियाँ कभी नहीं बताता। अनिल का काम औसत है, पर वह हर हफ्ते अपने बॉस को छोटा-सा अपडेट देता है और दूसरे विभागों से भी मेलजोल रखता है। नया प्रोजेक्ट आता है तो बॉस को अनिल का नाम पहले याद आता है। रमेश को लगता है कि यह अन्याय है, और कुछ हद तक है भी। पर यहाँ अनिल ने कुछ गलत नहीं किया, उसने बस खुद को दिखाई देने लायक बनाया।

यह फर्क समझना ज़रूरी है: जान-पहचान हमेशा भ्रष्टाचार नहीं होती। गलत तब होता है जब अयोग्य व्यक्ति को सिर्फ रिश्ते के दम पर किसी योग्य का हक़ दे दिया जाए।

बिना गलत हुए प्रभाव कैसे बनाया जा सकता है

प्रभाव बनाने के लिए चापलूसी या जोड़-तोड़ ज़रूरी नहीं। नीचे एक सीधा तरीका है जिसे आप अगले तीन महीनों में आजमा सकते हैं।

कदम-दर-कदम तरीका

1. **हफ्ते में एक बार 5 मिनट का अपडेट दें।** अपने सीधे बॉस को तीन पंक्तियों में बताइए कि इस हफ्ते क्या पूरा हुआ, क्या अटका है और आगे क्या होगा।
2. **महीने में दो नए लोगों से बात करें।** दूसरे विभाग या दूसरी टीम के किसी व्यक्ति से 15-20 मिनट की सामान्य बातचीत रखिए। मकसद काम समझना हो, फायदा माँगना नहीं।
3. **हर महीने एक व्यक्ति की मदद करें।** बिना बदले की उम्मीद के किसी की समस्या सुलझाइए। इससे भरोसा बनता है।
4. **अपने काम का रिकॉर्ड रखें।** हर तिमाही में अपनी तीन मुख्य उपलब्धियाँ लिख लीजिए, ताकि मूल्यांकन के समय आपके पास तथ्य हों।
5. **बैठकों में कम से कम एक बार स्पष्ट राय दें।** लंबा भाषण नहीं, एक सोचा-समझा सुझाव।

यह तरीका क्यों काम करता है

लोग उसी पर भरोसा करते हैं जिसे वे जानते हैं और जिसका काम वे देख पाते हैं। नियमित अपडेट और छोटी बातचीत से आपकी छवि "अनजान" से "जाना-

पहचाना और भरोसेमंद" में बदलती है। इसमें झूठ या दिखावा नहीं है, सिर्फ पारदर्शिता है।

सुझाव: हर अपडेट के अंत में एक वाक्य जोड़िए, "इसमें मुझे आपकी किस सलाह की ज़रूरत है?" इससे सामने वाला खुद को भागीदार महसूस करता है और रिश्ता मज़बूत होता है।

सीमा रेखा कहाँ खींचें

अपने लिए एक सरल कसौटी रखिए: क्या आप यही व्यवहार सबके सामने करने में सहज होंगे? अगर किसी बात को छिपाना पड़े, किसी की बुराई करनी पड़े या सच तोड़ना-मरोड़ना पड़े, तो वह प्रभाव नहीं, जोड़-तोड़ है।

अंत में एक व्यावहारिक बात

सत्ता का खेल पूरी तरह साफ नहीं है, और उससे दूर भागने पर भी आप उसके असर से बच नहीं सकते। बेहतर है कि आप उसे समझें, अपने मूल्यों के भीतर रहकर अपनी जगह बनाएँ, और जहाँ व्यवस्था सचमुच अन्यायपूर्ण हो, वहाँ आवाज़ भी उठाएँ।

सोचने वाले सवाल

1. क्या आपके काम के बारे में आपके बॉस या संस्था के फैसला लेने वालों को पता है?

2. क्या आपने कभी किसी योग्य व्यक्ति को पीछे रहते देखा? तब आपने क्या किया?
3. आपके लिए "प्रभाव बनाना" और "जोड़-तोड़ करना" के बीच की रेखा कहाँ है?
4. अगले एक महीने में आप कौन-सा एक छोटा कदम उठा सकते हैं जिससे आपकी दृश्यता बढ़े, बिना अपने उसूल छोड़े?

आम गलतियाँ जो अच्छे लोग इस खेल में करते हैं

सत्ता और प्रभाव को समझने के बाद भी कई ईमानदार लोग कुछ दोहराई जाने वाली गलतियों में फँस जाते हैं। इन्हें पहचान लेना आधी लड़ाई है।

1. **चुप्पी को विनम्रता समझ लेना।** जब आप किसी गलत फैसले पर कुछ नहीं कहते, तो बाकी लोग इसे सहमति मान लेते हैं।
2. **हर लड़ाई एक साथ लड़ना।** कुछ लोग हर छोटी बात पर अड़ जाते हैं। नतीजा यह होता है कि जब असली मुद्दा आता है, तब उनकी बात का वज़न कम हो चुका होता है।
3. **सहयोगियों को नज़रअंदाज़ करना।** अकेले सही होना काफ़ी नहीं होता। जिन लोगों का समर्थन चाहिए, उनसे पहले से संवाद ज़रूरी है।
4. **हर प्रभावशाली व्यक्ति को बेईमान मान लेना।** इससे आप ऐसे अच्छे मार्गदर्शकों से भी दूर हो जाते हैं जो आपकी मदद कर सकते थे।

5. शिकायत करना, पर समाधान न सुझाना। "यह गलत है" कहना आसान है। "इसे ऐसे सुधारा जा सकता है" कहने वाले की बात ज़्यादा सुनी जाती है।

एक और उदाहरण: मोहल्ले की समिति

एक आवासीय सोसाइटी में सीमा नाम की एक निवासी को पता चला कि रखरखाव के खर्च का हिसाब कभी साझा नहीं किया जाता। पहले उसने बैठक में गुस्से से सवाल उठाया। पदाधिकारी रक्षात्मक हो गए और बात वहीं दब गई।

कुछ हफ्तों बाद उसने तरीका बदला। उसने तीन-चार पड़ोसियों से अलग-अलग बात की और पूछा कि क्या उन्हें भी हिसाब देखना अच्छा लगेगा। फिर सबकी ओर से एक छोटा सुझाव रखा: हर तिमाही का सारांश नोटिस बोर्ड पर लगे। इस बार प्रस्ताव मान लिया गया।

यहाँ सीमा का मुद्दा वही था, पर रास्ता अलग था। उसने किसी पर आरोप नहीं लगाया, समर्थन जुटाया और एक व्यावहारिक समाधान दिया। यही सही तरीके से प्रभाव का इस्तेमाल है।

कोई भी कदम उठाने से पहले का चेकलिस्ट

अगर आप किसी संस्था या दफ्तर में बदलाव चाहते हैं या अपनी जगह बनाना चाहते हैं, तो पहले खुद से ये बातें पूछ लीजिए:

- क्या मेरे पास तथ्य और उदाहरण हैं, या सिर्फ भावना?
- इस फैसले का असली अधिकार किसके पास है?

- कौन-से दो-तीन लोग मेरी बात से सहमत हो सकते हैं?
- क्या मैं समस्या के साथ एक हल भी रख रहा हूँ?
- अगर बात न मानी गई, तो मेरा अगला कदम क्या होगा?

तेज़ तुलना: प्रतिक्रिया बनाम रणनीति

स्थिति	जल्दबाज़ प्रतिक्रिया	सोची-समझी रणनीति
अनदेखा किया गया	सबके सामने नाराज़गी जताना	अकेले में संबंधित व्यक्ति से स्पष्ट बात
गलत फैसला दिखा	तुरंत आरोप लगाना	तथ्य जुटाकर सुझाव के साथ बात रखना
श्रेय किसी और को मिला	मन में कड़वाहट पालना	अपने योगदान का रिकॉर्ड दिखाना

सोचने वाले अतिरिक्त सवाल

1. आखिरी बार आपने किसी मुद्दे पर चुप्पी साधी थी, तो क्या वह सही निर्णय था?
2. आपके आसपास ऐसा कौन है जो बिना जोड़-तोड़ के प्रभावशाली है, और उससे आप क्या सीख सकते हैं?

अध्याय 7: सामाजिक दोहरापन

हम सब बचपन से एक ही बात सुनते आए हैं: सच बोलो, ईमानदार रहो, किसी का हक मत मारो। स्कूल की किताबों में यही लिखा है, घर के बुजुर्ग यही सिखाते हैं, और मंचों से भाषण देने वाले भी यही दोहराते हैं। फिर जब हम असली दुनिया में कदम रखते हैं, तो कुछ और ही दिखता है। यही अंतर, यानी समाज जो कहता है और जो करता है, उसके बीच की खाई, सामाजिक दोहरापन कहलाती है।

कथनी और करनी का फासला

समाज एक आदर्श तस्वीर रखता है और एक असली तस्वीर जीता है। आदर्श तस्वीर तारीफ़ के लिए है, असली तस्वीर फ़ायदे के लिए। लोग इन दोनों के बीच आराम से आते-जाते रहते हैं और उन्हें अटपटा भी नहीं लगता।

उदाहरण के लिए, लगभग हर कोई कहता है कि रिश्तत बुरी चीज़ है। लेकिन जब अपना काम फँसा हो, तो वही लोग कहते हैं, "थोड़ा दे-लेकर निपटा लो, कौन इतना झंझट करे।" बात सिद्धांत की नहीं रहती, सुविधा की हो जाती है। सिद्धांत तब तक अच्छे लगते हैं जब तक उनकी कीमत किसी और को चुकानी हो।

यह दोहरापन पैदा क्यों होता है

इसके पीछे कोई बड़ी साज़िश नहीं है। ज़्यादातर यह इंसानी कमज़ोरी है:

- **छवि की चिंता:** लोग अच्छा *दिखना* चाहते हैं, भले ही अच्छा *होना* महँगा पड़े।

- **डर:** विरोध करने पर अकेले पड़ जाने या नुकसान उठाने का डर।
- **आदत:** जो चीज़ सब करते हैं, उसे हम सामान्य मान लेते हैं।
- **दूसरों पर टालना:** "मैं अकेला क्या बदल लूँगा?" वाली सोच।

तारीफ़ आसान है, साथ देना मुश्किल

अच्छे लोगों के साथ सबसे चुभने वाला अनुभव यह है कि उनकी तारीफ़ तो खूब होती है, पर मुसीबत में साथ कम ही मिलता है। जब कोई ईमानदार कर्मचारी अपने दफ़्तर में गड़बड़ी के खिलाफ़ बोलता है, तो साथी अकेले में कहते हैं, "तुमने बिल्कुल सही किया, हिम्मत चाहिए इसके लिए।" पर बैठक में वही लोग चुप रहते हैं।

इसकी वजह समझना ज़रूरी है। तारीफ़ में कुछ खर्च नहीं होता, जबकि साथ देने में जोखिम है। नौकरी, रिश्ते, सुकून, कुछ भी दाँव पर लग सकता है। इसलिए लोग **सुरक्षित समर्थन** चुनते हैं: मन में सहमति, जुबान पर तारीफ़, पर मैदान में दूरी।

इसे बुरा आदमी होने की निशानी मानना हमेशा सही नहीं है। अक्सर वे भी डरे हुए आम लोग होते हैं। फिर भी नतीजा यही निकलता है कि अकेला खड़ा इंसान थकने लगता है, और दूसरों को लगता है कि अच्छाई घाटे का सौदा है।

दोहरे मापदंड रोज़मर्रा की ज़िंदगी में

यह दोहरापन किसी बड़े मंच पर ही नहीं, हमारे आसपास हर दिन दिखता है। नीचे कुछ आम जगहें देखिए:

जगह	समाज क्या कहता है	असल में क्या होता है
घर	बेटा-बेटी बराबर हैं	आज़ादी और मौके अलग-अलग मिलते हैं
दफ़्तर	मेहनत और योग्यता सबसे ऊपर	पहचान और चापलूसी अक्सर आगे निकल जाती है
रिश्ते	रिश्ते दिल से निभते हैं	हैसियत देखकर मेलजोल बढ़ता है
शादी-ब्याह	सादगी अच्छी है	दिखावे पर होड़ लगती है
पड़ोस/ समाज	गलत का विरोध करो	जब तक अपना नुकसान न हो, चुप्पी

बोलने वाले और चुप रहने वाले

एक और रूप देखिए। कोई अमीर आदमी गलती करे तो कहा जाता है, "बड़े लोग हैं, छोड़ो।" वही गलती कोई साधारण इंसान करे तो उसे पूरे मोहल्ले में चर्चा का विषय बना दिया जाता है। यानी नियम एक है, पर तराजू दो हैं।

इसी तरह लोग दूसरों की निजी ज़िंदगी पर कड़े फ़ैसले सुनाते हैं, लेकिन अपने घर की वही बात "हालात की मजबूरी" कहकर निपटा देते हैं। जिस बात पर हम किसी को कटघरे में खड़ा करते हैं, उसी पर अपने लिए सफ़ाई तैयार रखते हैं।

इस दोहरेपन के बीच अच्छा इंसान क्या करे

सबसे पहले यह स्वीकार करना कि समाज पूरी तरह आदर्श नहीं है। यह कड़वा लगता है, पर इससे उम्मीदें यथार्थवादी बनती हैं और निराशा कम होती है। जब आप जानते हैं कि हर तालियाँ बजाने वाला साथ नहीं देगा, तो आप तारीफ़ को तारीफ़ की तरह लेते हैं, सहारे की तरह नहीं।

दूसरा, खुद अपना आईना देखना। हम सब कहीं न कहीं दोहरे मापदंड अपनाते हैं। ईमानदारी का मतलब सिर्फ़ दूसरों को परखना नहीं, खुद को भी उसी पैमाने पर रखना है।

अपने मापदंड जाँचने का तरीका

इसके लिए एक छोटा अभ्यास आजमाया जा सकता है:

1. एक कागज़ पर पिछले हफ़्ते की कोई ऐसी घटना लिखिए जिस पर आपने किसी की आलोचना की।
2. अब सोचिए, यदि वही काम आपके किसी अपने ने किया होता, तो आपकी प्रतिक्रिया क्या होती?
3. दोनों जवाब आमने-सामने लिखिए और फ़र्क देखिए।
4. जहाँ फ़र्क मिले, वहाँ खुद से पूछिए कि कारण तर्क है या लगाव।
5. अगले हफ़्ते उसी फ़र्क को थोड़ा कम करने की कोशिश कीजिए।

यह क्यों काम करता है: हमारा दिमाग अपने लिए रियायत ढूँढ लेता है। लिखकर तुलना करने से यह छिपी रियायत सामने आ जाती है, और बदलाव की शुरुआत

वहीं से होती है।

सुझाव: हर दिन के अंत में दो मिनट निकालकर सिर्फ एक सवाल पूछिए:
"आज मैंने कहाँ वही किया जो मैं दूसरों के लिए गलत मानता हूँ?" इतना
भर काफ़ी है।

साथ देने की छोटी शुरुआत

अगर आप चाहते हैं कि समाज में अच्छाई को सिर्फ तारीफ़ नहीं, साथ भी मिले, तो शुरुआत खुद से हो सकती है। किसी सही बात कहने वाले के पास खड़े हो जाइए, भले ही चुपचाप। कभी-कभी एक व्यक्ति का खुला समर्थन दूसरों का डर भी कम कर देता है।

सोचने के लिए सवाल

1. क्या मैंने कभी किसी सही इंसान की तारीफ़ की, पर ज़रूरत पड़ने पर पीछे हट गया?
2. मेरे आसपास कौन-से ऐसे नियम हैं जो कमज़ोर पर सख़्त और ताकतवर पर नरम हैं?
3. मैं किन बातों में अपने लिए अलग और दूसरों के लिए अलग मापदंड रखता हूँ?
4. अगर आज मुझे किसी सच के साथ खड़ा होना पड़े, तो मेरा सबसे बड़ा डर क्या होगा?

5. मैं अपने दायरे में एक छोटा-सा बदलाव क्या ला सकता हूँ?

दोहरेपन के कुछ और जाने-पहचाने उदाहरण

एक सरकारी दफ्तर की कहानी: एक क्लर्क हर साल ईमानदारी दिवस पर शपथ दिलवाता है, पर फ़ाइल आगे बढ़ाने के लिए "चाय-पानी" की उम्मीद रखता है। उससे पूछो तो जवाब मिलता है, "सब यही करते हैं, मैं अकेला क्या कर लूँगा?" यहाँ शपथ और व्यवहार दोनों सच्चे लगते हैं, क्योंकि दोनों अलग-अलग मौकों के लिए हैं।

एक परिवार की कहानी: एक पिता बेटे को सिखाता है कि झूठ बोलना पाप है। फिर फ़ोन आने पर वही कहता है, "बोल दो, पापा घर पर नहीं हैं।" बच्चा यह सब चुपचाप देखता है और सीखता है कि सच एक उपदेश है, आदत नहीं। बच्चे भाषण से कम, नज़ारे से ज़्यादा सीखते हैं।

इस मुद्दे पर आम गलतियाँ

अच्छे लोग भी दोहरेपन से निपटते समय कुछ गलतियाँ कर बैठते हैं:

- **सबको एक ही रंग में रंग देना:** "यहाँ सब बेईमान हैं" कहना आसान है, पर इससे उन कुछ लोगों के साथ भी अन्याय होता है जो चुपचाप सही चल रहे हैं।
- **खुद को सबसे ऊपर समझ लेना:** ईमानदारी जब घमंड बन जाती है, तो लोग बात सुनना ही बंद कर देते हैं।

- **गुस्से में बोलना:** सही बात भी तल्खी से कही जाए तो विरोध ही पैदा करती है।
- **तुरंत नतीजे की उम्मीद:** बदलाव धीमा होता है। एक बार में सब ठीक न होने पर हार मान लेना जल्दबाज़ी है।
- **अकेले लड़ना:** बिना किसी भरोसेमंद साथी के लड़ाई जल्दी थका देती है।

सही बात कहने से पहले का छोटा चेकलिस्ट

कोई बात उठाने से पहले खुद से ये बातें जाँच लीजिए:

सवाल	क्यों ज़रूरी है
क्या मेरे पास तथ्य और सबूत हैं?	भावना से ज़्यादा तथ्य असर करते हैं
क्या मैं यही बात अपने करीबी पर भी लागू करूँगा?	इससे आपकी बात की साख बनती है
मेरा मकसद सुधार है या नीचा दिखाना?	नीयत साफ़ हो तो लहजा खुद नरम होता है
क्या कोई एक भी व्यक्ति मेरे साथ खड़ा हो सकता है?	अकेलापन कम होता है
सबसे बुरा नतीजा क्या हो सकता है, और क्या मैं उसे सह सकता हूँ?	फ़ैसला सोच-समझकर होता है

आत्मसम्मान और समझदारी का संतुलन

दोहरेपन के खिलाफ़ खड़े होने का मतलब हर लड़ाई लड़ना नहीं है। कभी-कभी चुप रहना कायरता नहीं, रणनीति होती है, बशर्ते आप खुद को यह कहकर न बहलाएँ कि चुप रहना ही हमेशा ठीक है। अपनी सीमा तय कीजिए: कौन-सी बातें आप किसी हाल में नहीं करेंगे, चाहे कोई देखे या नहीं। जो इंसान अपनी इन कुछ रेखाओं को पहचानता है, वह बाकी जगह लचीला रहकर भी भीतर से टूटता नहीं।

आगे के लिए एक सवाल

अगली बार जब आप किसी को दोहरा कहें, तो ठहरकर देखिए कि वह बात कहीं आपके अपने आईने में भी तो नहीं झलक रही।

अध्याय 8: वास्तविक उदाहरण: जब सच्चाई की कीमत चुकानी पड़ी

कहानियाँ अक्सर वह बात समझा देती हैं जो तर्क नहीं समझा पाते। इसलिए इस अध्याय में हम कुछ ऐसी घटनाएँ देखेंगे, जो आपके आसपास रोज़ घटती हैं। इनमें नाम और ब्योरे काल्पनिक हैं, पर स्थितियाँ बहुत असली हैं। शायद आपको इनमें अपनी झलक भी दिख जाए।

कार्यस्थल की आम घटनाएँ

रिपोर्ट में हेरफेर से इनकार

रमेश एक निजी कंपनी में अकाउंट्स विभाग में काम करता था। तिमाही के अंत में उसके मैनेजर ने कहा कि कुछ खर्चे अगली तिमाही में दिखा दो, ताकि मुनाफ़ा अच्छा लगे। रमेश ने विनम्रता से मना कर दिया। उसने कहा कि यह रिकॉर्ड के साथ छेड़छाड़ है।

मैनेजर उस समय चुप रहा, लेकिन बदलाव धीरे-धीरे दिखने लगे। रमेश को अहम बैठकों से बाहर रखा जाने लगा। उसके काम में छोटी-छोटी कमियाँ निकाली जाने लगीं। प्रमोशन की सूची में उसका नाम नहीं आया। वहीं उसका सहकर्मी, जिसने बिना सवाल किए बात मान ली थी, आगे बढ़ गया।

यहाँ सच्चाई की कीमत सीधी सज़ा के रूप में नहीं आई। वह धीमी उपेक्षा के रूप में आई, जिसे साबित करना भी मुश्किल होता है।

श्रेय लेने वाला सहकर्मी

सीमा ने हफ्तों मेहनत करके एक प्रोजेक्ट तैयार किया। प्रस्तुति के दिन उसके सहकर्मी ने बोलने में आगे बढ़कर सारा श्रेय अपने नाम कर लिया। सीमा को लगा कि अपनी तारीफ़ खुद करना ठीक नहीं है, इसलिए वह चुप रही। नतीजा यह हुआ कि अधिकारियों की नज़र में काम उसका नहीं, किसी और का था।

यह कहानी बताती है कि चुप रहना हमेशा शराफ़त नहीं होता। कई बार वह अपने ही काम को अदृश्य कर देता है।

परिवार की आम घटनाएँ

जो सबका खयाल रखता है

अनिल घर का बड़ा बेटा था। पिता की बीमारी में उसने अपनी नौकरी के घंटे घटाए, पैसे खर्च किए और माँ की देखभाल की। छोटा भाई दूर रहता था और कभी-कभार फ़ोन करता था। जब ज़मीन के बँटवारे की बात आई, तो रिश्तेदारों ने छोटे भाई की "मजबूरियों" को ज़्यादा वज़न दिया। अनिल से कहा गया, "तुम तो समझदार हो, तुम्हीं छोड़ दो।"

अनिल की अच्छाई को उसकी ज़िम्मेदारी मान लिया गया, और उसके त्याग को हक़ नहीं, फ़र्ज़ समझा गया। जो इंसान बिना शिकायत देता रहता है, उससे अक्सर

यही उम्मीद बन जाती है कि वह हमेशा देता रहेगा।

सच बोलने वाली बहू

नेहा ने एक पारिवारिक समारोह में दबे स्वर में कहा कि खर्च का हिसाब पारदर्शी होना चाहिए। कुछ लोगों को यह बात चुभ गई। उस पर "बात बढ़ाने वाली" का ठप्पा लग गया। जबकि जिन्होंने गड़बड़ी की थी, उन पर कोई सवाल नहीं उठा।

किसलब्लोअर जैसे अनुभव

किसलब्लोअर वह व्यक्ति होता है जो किसी संस्था के भीतर हो रही गड़बड़ी को उजागर करता है। आपने ऐसी खबरें ज़रूर सुनी होंगी जिनमें गड़बड़ी बताने वाले कर्मचारी का तबादला हो गया, उसे अनुशासनहीन कहा गया या उसे अकेला छोड़ दिया गया। सामान्य पैटर्न अक्सर कुछ ऐसा दिखता है:

1. व्यक्ति पहले अपने सीधे अधिकारी को बताता है।
2. बात दबा दी जाती है या उसे "समझदारी" की सलाह मिलती है।
3. वह ऊपर शिकायत करता है।
4. उसकी छवि पर सवाल उठने लगते हैं।
5. साथी दूरी बना लेते हैं, क्योंकि वे खुद जोखिम नहीं लेना चाहते।

इसमें सबसे भारी चीज़ अकेलापन होती है। नौकरी जाने का डर तो होता ही है, पर अपने ही लोगों की चुप्पी ज़्यादा चुभती है।

यह भी सच है कि कुछ मामलों में सच्चाई आखिरकार सामने आई और जाँच हुई। लेकिन उस रास्ते में लोगों ने समय, सुकून और रिश्ते खोए। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि सच हमेशा तुरंत जीतता है, और यह भी नहीं कि वह हमेशा हारता है।

कहानियों से मिलने वाले सबक

स्थिति	भावुक प्रतिक्रिया	समझदार प्रतिक्रिया
गलत काम का दबाव	गुस्से में टकराव	शांत इनकार, और बातों का लिखित रिकॉर्ड
श्रेय छिन जाना	मन में कुढ़ना	काम की जानकारी समय पर साझा करना
परिवार में अपेक्षा	चुपचाप सहना	साफ़ सीमा तय करना
गड़बड़ी उजागर करना	अकेले लड़ना	सबूत और सहयोगी जुटाना

सबक एक: सिद्धांत की कीमत पहले से सोचिए

सच्चाई चुनना गलत नहीं, पर उसकी संभावित कीमत का अंदाज़ा पहले होना चाहिए। तब निर्णय डर से नहीं, तैयारी से होता है।

सबक दो: चुप्पी और सहनशीलता में फ़र्क है

सहनशीलता गुण है, पर जब वह आपके सम्मान को खाने लगे तो वह नुक़सान बन जाती है।

सबक तीन: अपने काम का रिकॉर्ड रखिए

यहाँ एक छोटी व्यावहारिक प्रक्रिया है:

1. किसी भी अहम निर्देश या बातचीत को उसी दिन ईमेल या डायरी में दर्ज करें।
2. तारीख, समय और संबंधित लोगों के नाम लिखें।
3. हर हफ़्ते अपने काम की पाँच पंक्तियों की सूची बनाएँ।
4. ज़रूरत पड़ने पर इसे शांत ढंग से दिखाएँ।

क्यों: स्मृति पर विवाद हो सकता है, लिखे हुए तथ्यों पर कम। इससे आप भावनाओं के बजाय प्रमाण के साथ खड़े होते हैं।

सुझाव: किसी गंभीर कानूनी या नौकरी संबंधी विवाद में फँसें तो किसी योग्य वकील या श्रम-विशेषज्ञ से सलाह लें। अकेले निर्णय लेने से बेहतर है कि सही जानकारी के साथ क़दम उठाएँ।

सबक चार: सहयोगी ज़रूरी हैं

ईमानदारी अकेले निभाना थका देता है। भरोसेमंद दोस्त, मार्गदर्शक या समूह आपको टिकने की ताक़त देते हैं।

सोचने वाले सवाल

1. क्या आपने कभी सही बात कहने की कीमत चुकाई? तब आपने क्या सीखा?
2. क्या आपकी अच्छाई को किसी ने आपकी कमज़ोरी समझ लिया?
3. किन परिस्थितियों में आप चुप रहे और बाद में पछताए?
4. अगर आज वही स्थिति दोबारा आए, तो आप क्या अलग करेंगे?
5. आपके आसपास कौन-से लोग हैं जिन पर आप मुश्किल समय में भरोसा कर सकते हैं?

एक और उदाहरण: जब सच ने साथ दिया, पर देर से

विकास एक सरकारी दफ़्तर में क्लर्क था। उसने देखा कि एक फ़ाइल में बिना जाँच के भुगतान पास किया जा रहा है। उसने अपनी आपत्ति लिखित में दर्ज कर दी। कुछ महीनों तक उसे ताने सुनने पड़े और काम का बोझ भी बढ़ा दिया गया। बाद में जब उसी फ़ाइल पर सवाल उठे, तो विकास की लिखित आपत्ति ने उसे किसी भी आरोप से बचा लिया।

इस कहानी में जीत शानदार नहीं थी। उसमें महीनों की बेचैनी थी। फिर भी लिखित रिकॉर्ड ने उसकी रक्षा की। यानी सच के साथ थोड़ी समझदारी जुड़ जाए, तो वह ज़्यादा टिकाऊ बन जाता है।

आम गलतियाँ जो अच्छे लोग करते हैं

इन घटनाओं में कुछ गलतियाँ बार-बार दिखती हैं:

- **सबके सामने टकराव:** सही बात भी गलत मंच पर कही जाए तो सामने वाला बहस जीत जाता है और मुद्दा खो जाता है।
- **बहुत देर तक चुप रहना:** शुरुआती छोटी बातों को टालने से अपेक्षाएँ पक्की हो जाती हैं, और बाद में आपत्ति करना अचानक बदलाव लगता है।
- **हर लड़ाई लड़ना:** हर मामला सिद्धांत का नहीं होता। ऊर्जा सीमित है, इसलिए यह चुनना ज़रूरी है कि कौन-सी बात छोड़ी नहीं जा सकती।
- **दूसरों से उसी नैतिकता की उम्मीद:** आप ईमानदार हैं, इसका मतलब यह नहीं कि सब आपके साथ वैसे ही पेश आएँगे। अपेक्षा और तैयारी में संतुलन रखें।
- **खुद को पीड़ित की भूमिका में बाँध लेना:** शिकायत में अटक जाने से समाधान के रास्ते दिखना बंद हो जाते हैं।

कदम उठाने से पहले पाँच मिनट की जाँच-सूची

कोई कठिन बात कहने या करने से पहले खुद से ये बातें पूछ लें:

प्रश्न	क्यों जरूरी है
क्या मेरे पास तथ्य और तारीखें हैं?	भावना से ज़्यादा तथ्य वज़न रखते हैं
मैं किससे बात कर रहा हूँ, और क्या वह सुनने की स्थिति में है?	गलत व्यक्ति से कही बात उल्टी पड़ सकती है
मेरा असली उद्देश्य क्या है: सुधार या बदला?	उद्देश्य साफ़ हो तो भाषा शांत रहती है
सबसे बुरा नतीजा क्या हो सकता है, और क्या मैं उसे सह सकता हूँ?	इससे डर की जगह तैयारी आती है
क्या कोई भरोसेमंद व्यक्ति मेरी बात की पुष्टि कर सकता है?	अकेली आवाज़ दबाना आसान होता है

एक छोटी बात जो अक्सर छूट जाती है

सच की कीमत चुकाने का मतलब यह नहीं कि आप हर बार हारे हुए ही रहेंगे। कई बार कीमत चुकाने के बाद जो चीज़ बचती है, वह है आपका आत्मसम्मान, यानी रात को बिना बोझ के सो पाने की क्षमता। यह लाभ मापा नहीं जा सकता, पर इसे नज़रअंदाज़ भी नहीं करना चाहिए।

अतिरिक्त सोचने वाले सवाल

1. आपके जीवन में कौन-सी एक बात ऐसी है जिस पर आप कभी समझौता नहीं करेंगे?
2. क्या आपने कभी किसी और को सच बोलने की कीमत चुकाते देखा और चुप रहे? तब आपने क्या महसूस किया?
3. आज आपके पास अपने काम या फ़ैसलों का कौन-सा लिखित प्रमाण मौजूद है?

अध्याय 9: आत्मसम्मान: अपनी कीमत खुद तय करना

बहुत से अच्छे लोग एक अजीब उलझन में जीते हैं। वे सबके काम आते हैं, सबकी सुनते हैं, फिर भी भीतर कहीं खालीपन रहता है। उन्हें लगता है कि उनकी कद्र नहीं होती। इसकी एक बड़ी वजह यह है कि उन्होंने दूसरों की नज़र में अपनी कीमत ढूँढ़ी, अपनी नज़र में नहीं। इस अध्याय में हम यही समझेंगे कि अपनी कीमत खुद तय करने का मतलब क्या है और उसे व्यवहार में कैसे उतारा जाए।

आत्मसम्मान और अहंकार में फर्क

दोनों बाहर से कभी-कभी एक जैसे दिखते हैं, क्योंकि दोनों में इंसान सीधा खड़ा नज़र आता है। पर भीतर की बनावट बिल्कुल अलग है।

आत्मसम्मान का मतलब है: "मैं जैसा हूँ, अपने मूल्यों के साथ ठीक हूँ, और मैं खुद को इज़्ज़त से बरतने का हकदार हूँ।" अहंकार का मतलब है: "मैं दूसरों से बड़ा हूँ, इसलिए मुझे विशेष व्यवहार मिलना चाहिए।" आत्मसम्मान शांत होता है। अहंकार को लगातार सबूत चाहिए।

पहलू	आत्मसम्मान	अहंकार
आलोचना पर	सुनता है, सही हो तो सुधरता है	तुरंत बचाव या पलटवार करता है
गलती पर	मान लेता है, "माफ़ कीजिए" कह पाता है	बहाने ढूँढ़ता है
दूसरों की सफलता पर	खुश हो सकता है	चुभन महसूस करता है
झुकने पर	ज़रूरत हो तो झुकता है, खुद नहीं टूटता	झुकने को हार मानता है
सीमा पर	शांति से सीमा बताता है	गुस्से से हुक्म देता है

एक आसान पहचान

खुद से पूछिए: "अगर इस बात पर कोई मेरी तारीफ़ न करे, तब भी क्या मैं इसे सही मानूँगा?" अगर जवाब हाँ है, तो आप आत्मसम्मान से चल रहे हैं। अगर आपका मन सिर्फ़ तब शांत होता है जब दूसरे आपको बड़ा मानें, तो वहाँ अहंकार काम कर रहा है।

एक उदाहरण लीजिए। दफ़्तर में किसी सहकर्मी ने आपका काम अपने नाम से पेश कर दिया। आत्मसम्मान कहेगा: "मैं शांति से, तथ्यों के साथ बात रखूँगा।" अहंकार कहेगा: "मैं सबके सामने उसे नीचा दिखाऊँगा।" पहला रास्ता आपकी इज़्ज़त बचाता है, दूसरा अक्सर मामला बिगाड़ देता है।

न कहना सीखना और सीमाएँ बनाना

अच्छे लोग अक्सर "हाँ" इसलिए कहते हैं कि "न" कहने से बुरा लगता है। नतीजा यह कि उनका समय, ऊर्जा और पैसा दूसरों की सुविधा में खर्च होता रहता है। अवसरवादी लोग यह जल्दी भाँप लेते हैं कि किससे बिना झिझक माँगा जा सकता है।

सीमा कोई दीवार नहीं है। वह एक साफ़ रेखा है जो बताती है कि आप क्या कर सकते हैं और क्या नहीं। इसका मतलब कठोर होना नहीं, ईमानदार होना है।

विनम्रता से "न" कहने के कदम

1. **रुकिए।** माँग सुनते ही जवाब मत दीजिए। कहिए, "मैं थोड़ी देर में बताता हूँ।" कम से कम 10 मिनट का समय लीजिए।
2. **खुद से पूछिए।** क्या मेरे पास समय और इच्छा दोनों हैं? अगर इनमें से एक भी नहीं, तो जवाब "न" की ओर झुका है।
3. **छोटा और साफ़ जवाब दीजिए।** जैसे: "इस बार मैं नहीं कर पाऊँगा।" लंबी सफ़ाई मत दीजिए।
4. **एक विकल्प दे सकते हैं, पर ज़रूरी नहीं।** "अगले हफ़्ते आधे घंटे मदद कर सकता हूँ" जैसा सीमित प्रस्ताव ठीक है।
5. **दोहराइए।** अगर सामने वाला दबाव डाले, तो वही बात उसी शांत लहजे में एक बार और कहिए।

यह क्यों काम करता है: तुरंत "हाँ" अक्सर डर या शर्म से निकलती है, सोच से नहीं। रुकने से आप भावना की जगह अपने फ़ैसले से जवाब देते हैं। छोटा जवाब इसलिए बेहतर है कि लंबी सफ़ाई सामने वाले को बहस का मौका देती है।

सुझाव: शुरुआत छोटी चीज़ों से कीजिए, जैसे किसी गैर-ज़रूरी बैठक या फ़ालतू फ़ॉरवर्ड संदेशों को मना करना। एक हफ़्ते में दो बार अभ्यास करें, ताकि बड़े मौकों पर आवाज़ काँपे नहीं।

सीमाओं का असर रिश्तों पर

शुरू में कुछ लोग नाराज़ होंगे, खासकर वे जिन्हें आपकी हर हाँ की आदत पड़ चुकी है। यह स्वाभाविक है। पर जो रिश्ता सिर्फ़ आपकी सुविधा पर टिका था, वह सीमा से हिलेगा ज़रूर। जो रिश्ता सच्चा है, वह सीमा को समझ लेगा और शायद आपको पहले से ज़्यादा सम्मान देगा।

दूसरों की स्वीकृति पर निर्भरता कम करना

हर इंसान चाहता है कि उसे पसंद किया जाए। यह कमज़ोरी नहीं, स्वाभाविक ज़रूरत है। समस्या तब बनती है जब आपका मूड, आपके फ़ैसले और आपकी पहचान दूसरों की तालियों पर टिक जाएँ। तब जो भी आपकी तारीफ़ रोक ले, वह आपको नियंत्रित कर सकता है।

अभ्यास के कदम

1. **अपने तीन मूल्य लिखिए।** जैसे ईमानदारी, मेहनत, परिवार। इन्हें कागज़ पर रखिए।
2. **हर बड़े फ़ैसले से पहले जाँचिए।** "क्या यह मेरे इन मूल्यों से मेल खाता है?" सिर्फ़ यह नहीं कि लोग क्या कहेंगे।
3. **रोज़ रात 5 मिनट निकालिए।** दिन की एक बात लिखिए जो आपने अपने उसूल के हिसाब से की, चाहे किसी ने देखी या नहीं।
4. **भरोसेमंद दो-तीन लोग चुनिए।** पूरे समाज की राय की जगह उन्हीं की ईमानदार सलाह को वज़न दीजिए।

यह क्यों काम करता है: जब आप अपने कामों का हिसाब खुद रखते हैं, तो आत्मसम्मान का स्रोत भीतर बनता है। बाहर की प्रशंसा बोनस बन जाती है, ज़रूरत नहीं।

सुझाव: अगर किसी की राय बहुत चुभे, तो पूछिए, "क्या इसमें कोई काम की बात है?" काम की हो तो अपनाइए, वरना छोड़ दीजिए। हर राय आपके जवाब की हकदार नहीं होती।

अपनी कीमत तय करने का मतलब

अपनी कीमत खुद तय करना घमंड नहीं है। इसका मतलब है कि आप तय करें कि किस व्यवहार को सहेंगे, किसे नहीं, और किन शर्तों पर किसी के साथ चलेंगे।

दुनिया वही कीमत देती है जो आप खुद अपने व्यवहार से दिखाते हैं। जो इंसान हर बार झुककर खड़ा रहे, उसे लोग छोटा मानने लगते हैं। जो शांत पर दृढ़ रहे, उसे लोग गंभीरता से लेते हैं।

यह भी याद रखिए कि कभी-कभी तनाव या अकेलेपन के कारण आत्मसम्मान बहुत गिर जाता है। ऐसे में किसी काउंसलर या मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ से सलाह लेना समझदारी है।

सोचने वाले सवाल

1. पिछली बार कब आपने मन के खिलाफ़ "हाँ" कहा था, और उसकी क्या कीमत चुकानी पड़ी?
2. आपके जीवन में कौन-सी एक सीमा अभी तक अनकही है?
3. आप किसकी स्वीकृति के लिए सबसे ज़्यादा बेचैन रहते हैं, और क्यों?
4. क्या आपका आत्मसम्मान कभी अहंकार में बदला है? तब आपने क्या महसूस किया?
5. अगर कोई आपकी तारीफ़ न करे, तब भी आप कौन-सा काम करते रहेंगे?

आत्मसम्मान की राह में आम गलतियाँ

सीमाएँ बनाते समय कई लोग कुछ गलतियाँ दोहराते हैं। इन्हें पहले से जान लेना काफ़ी मदद करता है।

1. **एक साथ सब कुछ बदलने की कोशिश।** कल तक सबको "हाँ" कहने वाला इंसान अचानक सबको "न" कहने लगे, तो रिश्ते झटका खाते हैं। बदलाव धीरे और टिकाऊ रखिए।
2. **सीमा को सज़ा बना देना।** "अब देखता हूँ, कौन मदद माँगता है" जैसी भावना सीमा नहीं, बदला है। सीमा का मकसद खुद को बचाना है, दूसरे को चोट देना नहीं।
3. **हर असहमति को अपमान समझ लेना।** कोई आपसे अलग राय रखे, इसका मतलब यह नहीं कि वह आपकी इज़्ज़त नहीं करता।
4. **अपनी तुलना हर किसी से करना।** आत्मसम्मान तब डगमगाता है जब आप अपनी शुरुआत की तुलना किसी और के मुकाम से करते हैं।
5. **माफ़ी और कमज़ोरी को एक मान लेना।** गलती पर "माफ़ कीजिए" कहना आत्मसम्मान को घटाता नहीं, मज़बूत दिखाता है।

एक वास्तविक-सा उदाहरण

मान लीजिए रमेश एक छोटी कंपनी में काम करता है। वह हमेशा देर तक रुककर दूसरों का अधूरा काम निपटा देता था। धीरे-धीरे यह उसकी "ज़िम्मेदारी" मान ली गई। एक दिन उसने अपने मैनेजर से कहा, "मैं अपना काम समय पर पूरा करूँगा, पर दूसरों का बचा काम हर बार नहीं ले पाऊँगा। ज़रूरी हो तो हम इसे बाँटने का तरीका तय कर लें।"

शुरुआत में माहौल थोड़ा ठंडा रहा। कुछ सहकर्मी नाराज़ भी दिखे। पर कुछ हफ्तों बाद काम का बँटवारा साफ़ हुआ, और रमेश की बात को पहले से ज़्यादा गंभीरता

से सुना जाने लगा। ध्यान दीजिए, उसने न बहस की, न ताना मारा। उसने सिर्फ तथ्य और अपनी सीमा रखी।

सीमा बनाम अहंकार: त्वरित जाँच-सूची

कोई कदम उठाने से पहले ये बातें खुद से पूछ लीजिए:

- क्या मैं शांत होकर यह बात कह पा रहा हूँ?
- क्या मेरा मकसद अपनी रक्षा है, किसी को नीचा दिखाना नहीं?
- क्या मैं सामने वाले की बात भी सुनने को तैयार हूँ?
- क्या यह बात मेरे तीन मूल्यों से मेल खाती है?
- अगर नतीजा मेरी उम्मीद जैसा न हो, तब भी क्या मैं इस फ़ैसले के साथ ठीक रहूँगा?

अगर ज़्यादातर जवाब "हाँ" हैं, तो आप सही दिशा में हैं।

छोटे-छोटे दैनिक अभ्यास

स्थिति	पुरानी आदत	नई आदत
अनचाहा न्योता	मजबूरी में हामी	"धन्यवाद, इस बार नहीं आ पाऊँगा"
तारीफ़ मिलने पर	"अरे नहीं, कुछ खास नहीं"	"शुक्रिया"
काम का श्रेय	चुप रह जाना	अपने योगदान को शांति से बताना
अपनी गलती	सफ़ाई देना	मानकर सुधार की बात करना

ये बदलाव मामूली लगते हैं, पर इन्हीं से भीतर का भरोसा बनता है कि आपकी बात की भी जगह है।

सोचने वाले कुछ और सवाल

1. इस अध्याय की कौन-सी गलती आपको अपनी लगी?
2. इस हफ़्ते आप कौन-सा एक छोटा अभ्यास शुरू कर सकते हैं?

अध्याय 10: क्या अच्छे लोग सच में हारते हैं?

कभी-कभी किसी ईमानदार इंसान को हारते देखकर हमें लगता है कि अच्छाई घाटे का सौदा है। प्रमोशन उसे मिल जाता है जो बॉस की हर बात पर हामी भरता है। तारीफ उसकी होती है जो काम कम और प्रचार ज़्यादा करता है। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है। पर इस सवाल का जवाब इतना सीधा नहीं है। इसके लिए हमें यह देखना होगा कि हम "हार" किसे कह रहे हैं और कितने समय के पैमाने पर देख रहे हैं।

छोटी अवधि की हार और लंबी अवधि का भरोसा

अवसरवादी व्यक्ति की जीत अक्सर तुरंत दिखती है। उसे नया पद मिलता है, नई पहचान मिलती है, और लोग उसे घेरे रहते हैं। ईमानदार व्यक्ति की कमाई धीमी होती है और आसानी से नज़र नहीं आती। इसलिए तुलना करते समय हम अक्सर एक तरफ़ की पूरी तस्वीर और दूसरी तरफ़ का सिर्फ़ एक पल देख रहे होते हैं।

भरोसा कैसे बनता है

भरोसा एक दिन में नहीं बनता। यह उन सैकड़ों छोटे मौकों से बनता है जब आपने वही किया जो कहा था। जब किसी ने आपकी गैरमौजूदगी में आपकी बात का मान रखा, या जब आपने नुकसान उठाकर भी वादा निभाया। ये बातें किसी रिपोर्ट में दर्ज नहीं होतीं, पर लोगों की याददाश्त में दर्ज होती हैं।

अवसरवादी रास्ते की एक कमज़ोरी है। वह हर बार नए लोगों और नए मौकों पर टिका होता है। जब तक फ़ायदा है, तब तक रिश्ते हैं। जिस दिन हालात बदलते हैं, सहारा देने वाला कोई नहीं मिलता। दूसरी ओर, भरोसेमंद इंसान को मुश्किल वक़्त में अक्सर वे लोग मिल जाते हैं जिनकी उसने कभी बिना शर्त मदद की थी। यह कोई गारंटी नहीं है, पर एक आम पैटर्न ज़रूर है।

ईमानदारी से यह भी नहीं कि हर बार जीत मिले

यहाँ संतुलन भी ज़रूरी है। यह कहना ग़लत होगा कि अच्छे लोगों को हमेशा देर-सबेर इनाम मिलता ही है। कई बार नहीं मिलता। कुछ लोग वाकई अन्याय के शिकार होकर गुमनाम रह जाते हैं। लेकिन फिर भी, भरोसे की पूँजी आपके विकल्प बढ़ाती है, और यही उसका असली मूल्य है।

चरित्र, सुकून और रिश्तों की अदृश्य कमाई

कुछ कमाई ऐसी होती है जो बैंक के खाते या विज़िटिंग कार्ड पर नहीं दिखती। फिर भी वह ज़िंदगी की गुणवत्ता तय करती है।

पहलू	अवसरवादी रास्ता	सिद्धांत का रास्ता
तुरंत फ़ायदा	अक्सर ज़्यादा	अक्सर कम
रात की नींद	डर रहता है कि राज़ खुल न जाए	मन अपेक्षाकृत हल्का रहता है
रिश्ते	ज़रूरत पर टिके	भरोसे पर टिके
मुश्किल में साथ	अनिश्चित	अक्सर मिल जाता है
अपनी नज़र में छवि	समझौतों का बोझ	आत्मसम्मान बना रहता है

सुकून को गिनती में लाइए

हम तनख्वाह और पद गिनते हैं, पर सुकून नहीं गिनते। सोचिए, जिस आदमी को हर झूठ याद रखना पड़ता है, उसकी मानसिक थकान कितनी होगी। जिसे आईने में खुद से नज़र मिलाने में झिझक नहीं होती, उसके पास एक ऐसी दौलत है जो खरीदी नहीं जा सकती। अगर तनाव या नींद की समस्या गंभीर हो, तो किसी योग्य विशेषज्ञ से सलाह लेना बेहतर है।

रिश्तों की चुपचाप जमा होती पूँजी

एक पुराने सहकर्मी का फ़ोन आना कि "यहाँ एक जगह खाली है, तुम्हारा नाम याद आया", या किसी पड़ोसी का बिना कहे मदद को आ जाना, ये इसी अदृश्य कमाई के नतीजे हैं। ऐसी चीज़ें अचानक नहीं होतीं। ये सालों की सच्चाई का फल हैं।

सफलता की अपनी परिभाषा दोबारा गढ़ना

अगर हम सफलता को सिर्फ पैसा, पद और तालियों तक सीमित रखेंगे, तो अवसरवादी हमेशा आगे दिखेंगे, क्योंकि वह दौड़ उन्हीं के नियमों पर चलती है। इसलिए ज़रूरी है कि हम अपना पैमाना खुद तय करें।

अपनी परिभाषा लिखने के चरण

1. **कागज़ और पेन लें।** लगभग 20 मिनट का शांत समय निकालें।
2. **पाँच चीज़ें लिखें** जो आपके लिए अच्छी ज़िंदगी का हिस्सा हैं, जैसे परिवार का समय, सम्मान, आर्थिक स्थिरता, सीखना, स्वास्थ्य।
3. **हर चीज़ के आगे 1 से 10 तक अंक दें** कि आज आप वहाँ कितने पास हैं।
4. **सबसे कम अंक वाली एक चीज़ चुनें** और अगले 30 दिनों के लिए एक छोटा-सा कदम तय करें।
5. **हर तीन महीने में** इसे दोबारा पढ़ें और बदलाव करें।

यह क्यों काम करता है: जब पैमाना लिखा हुआ हो, तो दूसरों की चमक देखकर बहकना कठिन हो जाता है। आप तुलना की जगह अपनी दिशा देखने लगते हैं।

सुझाव: पैसे से जुड़े बड़े फैसले, जैसे निवेश या कर्ज़, लेने से पहले किसी योग्य वित्तीय सलाहकार से ज़रूर बात करें। अपनी परिभाषा में आर्थिक सुरक्षा को नज़रअंदाज़ न करें, क्योंकि अच्छाई को टिके रहने के लिए ज़मीन भी चाहिए।

एक छोटा उदाहरण

मान लीजिए, एक शिक्षक ने कभी ट्यूशन के लिए बच्चों पर दबाव नहीं डाला। उसकी कमाई उसके साथियों से कम रही। पर बीस साल बाद उसके पुराने छात्र उसके पास आते हैं, कोई सलाह माँगता है, कोई सम्मान देने। क्या वह हारा हुआ है? शायद आर्थिक पैमाने पर वह पीछे है, पर अपनी परिभाषा में वह पूरा है।

सोचने वाले सवाल

- आप जिन लोगों को "जीता हुआ" मानते हैं, उनकी जीत किस आधार पर तय करते हैं?
- क्या आपने कभी किसी की ईमानदारी की वजह से उस पर भरोसा किया और बाद में उसका फ़ायदा देखा?
- आपके जीवन की वह कौन-सी अदृश्य कमाई है जिसे आपने कभी गिना ही नहीं?
- अगर पाँच साल बाद कोई आपसे पूछे कि आप किस बात पर गर्व करते हैं, तो आप क्या कहना चाहेंगे?
- आपकी अपनी सफलता की परिभाषा आज क्या है, और क्या वह सच में आपकी है?

अच्छे लोगों की आम गलतियाँ

यह मान लेना आसान है कि हर बार हार दूसरों की चालाकी की वजह से होती है। कई बार अच्छे लोग खुद भी अपनी राह मुश्किल कर लेते हैं। इन गलतियों को पहचानना ज़रूरी है:

- **चुप रहना ही गुण समझ लेना।** अपना काम बताना घमंड नहीं है। अगर आपकी मेहनत किसी को पता ही नहीं, तो उसकी कद्र कौन करेगा?
- **हर किसी की मदद को अच्छाई मान लेना।** जो हर बार "ना" कहने से डरता है, वह धीरे-धीरे थक जाता है और लोग उसकी सीमा समझना बंद कर देते हैं।
- **दूसरों से भी वही उम्मीद रखना।** हम ईमानदार हैं, इसलिए सब ईमानदार होंगे, यह भोलापन नुकसान करा सकता है।
- **कड़वाहट पाल लेना।** बार-बार धोखा खाकर कुछ लोग खुद ही रूखे हो जाते हैं। तब वे वही चीज़ खो देते हैं जो उन्हें खास बनाती थी।
- **लिखित या स्पष्ट बात न करना।** भरोसा अच्छी चीज़ है, पर ज़रूरी बातें साफ़ तय कर लेना समझदारी है।

अच्छाई के साथ समझदारी: दो तुलनात्मक उदाहरण

स्थिति	भोली अच्छाई	समझदार अच्छाई
काम का श्रेय	चुप रहकर दूसरों को लेने देना	शालीनता से अपना योगदान बताना
बार-बार मदद की माँग	हर बार हाँ कह देना	अपनी क्षमता देखकर साफ़ सीमा रखना
किसी पर शक होने पर	नज़रअंदाज़ करना	सच्चाई जाँचना, बातें दर्ज रखना
धोखा मिलने पर	सबसे दूरी बना लेना	सबक लेना, पर सही लोगों पर भरोसा रखना

एक और उदाहरण

मान लीजिए, एक दुकानदार ने कभी कम तौलकर नहीं बेचा। शुरू में उसकी बिक्री धीमी रही, क्योंकि पास की दुकान सस्ते का लालच देती थी। पर उसने अपने नियमित ग्राहकों से साफ़ बात की और अपनी गुणवत्ता लोगों को दिखाई। धीरे-धीरे लोग उसके पास इसलिए आने लगे कि उन्हें ठगे जाने का डर नहीं था। यहाँ उसकी अच्छाई के साथ थोड़ी समझदारी भी जुड़ी थी, और यही मेल काम आया।

एक त्वरित जाँच-सूची

हफ़्ते के अंत में खुद से ये बातें पूछकर देखिए:

1. क्या इस हफ़्ते मैंने कोई वादा निभाया, जबकि उसमें मेरा थोड़ा नुकसान था?
2. क्या मैंने अपने काम की जानकारी सही लोगों तक पहुँचाई?
3. क्या मैंने कहीं "ना" कहा, जहाँ कहना ज़रूरी था?
4. क्या मैंने किसी पर आँख मूँदकर भरोसा किया, जहाँ थोड़ी जाँच ठीक रहती?
5. क्या मैं आज भी वैसा ही इंसान हूँ जैसा बनना चाहता था?

अगर तीन या उससे ज़्यादा जवाब "हाँ" हैं, तो आप सही दिशा में हैं। अगर नहीं, तो घबराइए नहीं। यह सिर्फ़ संकेत है कि अगले हफ़्ते किस पर ध्यान देना है।

आगे के लिए एक सोच

अच्छा बने रहना और अपना ध्यान रखना एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। असली चुनौती यह है कि हम सिद्धांत न छोड़ें, पर आँखें भी खुली रखें।

और सोचने के लिए

- आपकी कौन-सी आदत आपकी अच्छाई को कमज़ोरी बना रही है?
- पिछली बार आपने कब बिना अपराधबोध के "ना" कहा था?

अध्याय 11: समझदार अच्छाई: भोलेपन से आगे

अच्छा बने रहकर व्यावहारिक कैसे बनें

बहुत से लोग मान लेते हैं कि अच्छा होने का मतलब है हर किसी पर भरोसा करना, हर बात पर हाँ कहना और नुकसान उठाकर भी चुप रहना। यह अच्छाई नहीं, भोलापन है। असली अच्छाई में विवेक भी शामिल होता है। आप ईमानदार रहते हैं, पर आँखें खुली रखते हैं। आप मदद करते हैं, पर यह भी देखते हैं कि मदद किसे और किस तरह दी जा रही है।

एक सीधी मिसाल लीजिए। आपका सहकर्मी बार-बार अपना काम आप पर डाल देता है और श्रेय खुद ले लेता है। भोला इंसान सोचेगा, "कोई बात नहीं, मैं ही कर देता हूँ।" समझदार अच्छा इंसान कहेगा, "इस बार कर देता हूँ, पर आगे से काम का बँटवारा साफ़ तय होना चाहिए।" दोनों में दयालुता है, फ़र्क सिर्फ़ सीमा का है।

भोलेपन और समझदारी का फ़र्क

पहलू	भोली अच्छाई	समझदार अच्छाई
भरोसा	सब पर तुरंत	व्यवहार देखकर धीरे-धीरे
मदद	बिना सोचे, हर बार	ज़रूरत और सीमा समझकर
असहमति	चुप रहना	शांति से साफ़ कहना
धोखा मिलने पर	टूट जाना या कड़वे हो जाना	सबक लेना, आगे बढ़ना
अपनी ज़रूरतें	सबसे आखिर में	बराबर महत्व

अपनी अच्छाई को व्यावहारिक बनाने के चार कदम

1. **हाँ कहने से पहले एक दिन का समय लें।** जब कोई बड़ा अनुरोध करे, तो कहें, "मैं कल बताता हूँ।" इससे दबाव में लिया गया फ़ैसला टल जाता है।
2. **मदद की सीमा पहले तय करें।** समय हो या पैसा, पहले तय कर लें कि कितना दे सकते हैं। सीमा बिना बताए पार हो जाए तो मन में शिकायत जमा होती है।
3. **वादा सोच-समझकर करें।** जो निभा नहीं सकते, उसे न करना भी ईमानदारी है।
4. **हर अहम बात लिखित में रखें।** पैसे, काम की ज़िम्मेदारी और समय-सीमा का संदेश या ईमेल बना रहे, तो बाद में बहस कम होती है।

यह क्यों काम करता है? क्योंकि ज़्यादातर नुकसान बुरे इरादों से नहीं, अस्पष्टता से होता है। जहाँ बात साफ़ होती है, वहाँ फ़ायदा उठाना मुश्किल हो जाता है।

सुझाव: जब किसी को "ना" कहना भारी लगे, तो यह वाक्य आज़माएँ: "मैं इसमें मदद करना चाहता हूँ, पर अभी मेरे लिए यह संभव नहीं है।" इसमें न रूखापन है, न सफ़ाई देने की मजबूरी।

लोगों को परखना, पर कड़वाहट से बचना

परखने का मतलब शक करना नहीं है। परखने का मतलब है व्यवहार को समय देकर देखना। शब्द कोई भी बोल सकता है, पर आदतें झूठ नहीं बोलतीं।

परखने के तीन आसान संकेत

- **छोटी बातों में सच:** जो इंसान छोटी बातों में बढ़ा-चढ़ाकर बोलता है, वह बड़ी बातों में भी ऐसा कर सकता है।
- **ज़रूरत के बाद का व्यवहार:** काम निकलने के बाद भी कोई वैसा ही रहता है या नहीं, यह बहुत कुछ बताता है।
- **कमज़ोरों से बर्ताव:** जो वेटर, ड्राइवर या अधीनस्थ से रूखा है, वह मौक़ा मिलने पर आपसे भी वैसा ही हो सकता है।

एक बात याद रखें: किसी को एक बार में पूरा नहीं आँका जा सकता। तीन-चार मौक़ों पर एक ही पैटर्न दिखे, तभी उसे गंभीरता से लें।

कड़वाहट क्यों नुकसान करती है

धोखा खाने के बाद कई लोग कहने लगते हैं, "अब किसी पर भरोसा नहीं।" यह सुरक्षा जैसा लगता है, पर असल में यह दूसरी हार है। पहली बार किसी ने आपको चोट पहुँचाई, दूसरी बार आप खुद अपने अंदर की नरमी को ख़त्म कर देते हैं। कड़वाहट आपका स्वभाव बदल देती है, जबकि सावधानी सिर्फ़ आपका तरीक़ा बदलती है।

इसलिए फ़र्क़ साफ़ रखें: **भरोसा देने का दायरा घटाइए, इंसानियत का दायरा नहीं।** किसी को पैसे का हिसाब न सौंपना और फिर भी उससे शिष्टता से पेश आना, दोनों साथ चल सकते हैं।

सुझाव: किसी से धोखा मिले तो उसी दिन एक पन्ने पर तीन बातें लिखें: क्या हुआ, कौन-सा संकेत मैंने नज़रअंदाज़ किया, और आगे मैं क्या अलग करूँगा। इससे गुस्सा सबक में बदल जाता है।

संवाद, तैयारी और सही साथियों का महत्व

संवाद: साफ़ बोलना भी एक कला है

अच्छे लोग अक्सर टकराव से बचने के लिए बात दबा देते हैं। नतीजा यह कि बात बड़ी होकर लौटती है। कठिन बातचीत के लिए यह क्रम अपनाएँ:

1. पहले तथ्य बताएँ, जैसे "पिछले दो हफ़्तों में तीन बार रिपोर्ट देर से मिली।"

2. फिर बताएँ कि इसका असर क्या हुआ।

3. अंत में अपनी अपेक्षा साफ़ कहें।

क्यों? जब आप आरोप की जगह तथ्य रखते हैं, तो सामने वाला बचाव की मुद्रा में कम जाता है और बात सुलझने की संभावना बढ़ती है।

तैयारी: अच्छाई को सुरक्षा चाहिए

ईमानदारी अकेली काफी नहीं होती, उसके पीछे थोड़ी तैयारी भी चाहिए। अपने काम का रिकॉर्ड रखिए, अपनी उपलब्धियाँ समय-समय पर सामने रखिए, और आर्थिक मामलों में कुछ बचत की आदत बनाइए। निवेश या क़ानूनी उलझनों में किसी योग्य सलाहकार से परामर्श ज़रूर लें। तैयारी होने पर आप डर के कारण समझौता नहीं करते, इसलिए सिद्धांतों पर टिके रहना आसान हो जाता है।

सही साथी: अकेले टिकना कठिन है

कुछ ऐसे लोग खोजिए जो आपसे सच बोल सकें और आपकी अच्छाई का फ़ायदा न उठाएँ। चार-पाँच भरोसेमंद लोगों का छोटा घेरा भी बड़ा सहारा बनता है। ऐसे घेरे में ईमानदारी कमज़ोरी नहीं, साझा मूल्य होती है।

सोचने वाले सवाल

1. क्या मैंने कभी भोलेपन को अच्छाई समझ लिया? उसका क्या नतीजा रहा?
2. मेरे जीवन में कौन-सी एक सीमा है जो मुझे अब साफ़ कहनी चाहिए?
3. किसी से चोट खाने के बाद क्या मैं सावधान हुआ हूँ या कड़वा?

4. मेरे आसपास ऐसे कितने लोग हैं जिनसे मैं बिना डर के सच कह सकता हूँ?
5. आज से मैं कौन-सी एक छोटी तैयारी शुरू कर सकता हूँ?

समझदार अच्छाई में आम ग़लतियाँ

सही इरादे के बावजूद कुछ आदतें हमें बार-बार उलझा देती हैं। इन्हें पहचान लेना आधा समाधान है।

- **हर बार खुद को साबित करना:** कई लोग मान लेते हैं कि ज़्यादा काम और ज़्यादा त्याग से ही उनकी क़द्र होगी। असल में लगातार उपलब्ध रहने वाले इंसान की क़ीमत अक्सर घट जाती है।
- **गुस्सा जमा करना और एक दिन फट पड़ना:** छोटी बातों पर चुप रहकर अचानक बड़ा झगड़ा कर देना रिश्ते को ज़्यादा नुकसान पहुँचाता है, बजाय समय पर शांत टोक देने के।
- **सबको एक ही तराजू में तौलना:** एक धोखेबाज़ के आधार पर सबको संदिग्ध मान लेना भी उतनी ही बड़ी भूल है जितनी सब पर आँख मूँदकर भरोसा।
- **सलाह लेने में झिझक:** अच्छे लोग सोचते हैं कि मदद माँगना कमज़ोरी है। जबकि सही समय पर पूछ लेना अक्सर बड़े नुकसान से बचा देता है।
- **सही का मतलब जीतना समझ लेना:** हर बहस जीतना ज़रूरी नहीं। कभी-कभी बात रखकर पीछे हट जाना ही समझदारी है।

एक छोटा उदाहरण: दुकान का उधार

रमेश की किराने की दुकान है। उसका एक पुराना ग्राहक कई बार उधार ले चुका था और हर बार "अगले हफ्ते" कहकर टाल देता था। रमेश संकोच में कुछ नहीं कहता रहा और रकम बढ़ती गई।

जब उसने इस पर सोचा, तो तरीका बदला। उसने नरमी से कहा, "भाई, आपकी इज़्जत है, पर उधार की एक सीमा तय कर लें। पुराना हिसाब चुकाने के बाद ही नया सामान दे पाऊंगा।" उसने रकम भी एक कॉपी में दर्ज की। ग्राहक कुछ दिन नाराज़ रहा, पर धीरे-धीरे हिसाब साफ़ हुआ। यहाँ रमेश कठोर नहीं बना, उसने सिर्फ़ अपनी दयालुता को एक ढाँचा दिया।

रोज़ की त्वरित जाँच-सूची

दिन के अंत में दो मिनट निकालकर खुद से ये बातें पूछ सकते हैं:

सवाल	हाँ / नहीं
क्या आज मैंने किसी बात पर बिना चाहे हाँ कहा?	
क्या कोई ज़रूरी बात मैंने टाल दी जो कहनी चाहिए थी?	
क्या मैंने किसी को उसके व्यवहार से परखा, सिर्फ़ शब्दों से नहीं?	
क्या आज मैंने अपने लिए भी थोड़ा समय या ऊर्जा बचाई?	

अगर कई जवाब चिंता वाले हों, तो अगले दिन सिर्फ़ एक चीज़ सुधारने का लक्ष्य रखें। सब कुछ एक साथ बदलने की कोशिश अक्सर टिकती नहीं।

आखिरी व्यावहारिक बात

समझदार अच्छाई कोई एक दिन में सीखी जाने वाली चीज़ नहीं है। यह अभ्यास से बनती है, और इसमें ग़लतियाँ भी होंगी। कभी आप ज़्यादा नरम पड़ेंगे, कभी ज़्यादा सख़्त। ज़रूरी यह है कि हर बार थोड़ा संतुलन बेहतर हो। अपनी ग़लतियों पर खुद के प्रति भी उतने ही उदार रहिए जितने आप दूसरों के प्रति रहना चाहते हैं।

अध्याय 12: आगे का रास्ता: एक व्यावहारिक कार्ययोजना

समझ लेना आसान है, बदलना मुश्किल। इसलिए इस अध्याय में विचार कम और काम ज़्यादा हैं। इन्हें एक साथ करने की ज़रूरत नहीं। एक कदम चुनिए, दो हफ़्ते आज़माइए, फिर अगला कदम जोड़िए।

अपने मूल्य लिखें और रोज़ के फैसलों से जोड़ें

ज़्यादातर लोग कहते हैं कि वे ईमानदार हैं, पर यह नहीं बता पाते कि ईमानदारी उनके लिए असल में क्या मांगती है। जो चीज़ लिखी नहीं गई, वह दबाव के समय आसानी से खिसक जाती है। लिखने से मूल्य एक अस्पष्ट भावना से बदलकर कसौटी बन जाते हैं।

मूल्यों की सूची बनाने के कदम

1. एक कागज़ और पेन लें। फ़ोन दूर रख दें। 15 मिनट का समय तय करें।
2. उन तीन-चार मौकों को याद करें जब आपको अपने किसी फैसले पर गर्व हुआ। हर मौके के आगे लिखें कि उसमें आपने किस चीज़ की रक्षा की थी।
3. उन दो-तीन मौकों को भी लिखें जब आपको बाद में पछतावा या बेचैनी हुई।
4. इन दोनों सूचियों से अधिकतम पाँच मूल्य चुनें, जैसे सच बोलना, वादा निभाना, किसी को नीचा न दिखाना, मेहनत की कमाई, परिवार को समय।

5. हर मूल्य के आगे एक वाक्य लिखें कि रोज़ की ज़िंदगी में वह कैसा दिखेगा।

उदाहरण: "वादा निभाना" यानी "जो समय बताया, उस पर पहुँचना, या पहले से बता देना कि नहीं पहुँच पाऊँगा।"

क्यों: पाँच से ज़्यादा मूल्य याद नहीं रहते, और रोज़ के व्यवहार वाला वाक्य ही उन्हें असली बनाता है।

रोज़ के फैसलों से जोड़ना

सुबह दो मिनट निकालकर देखें कि आज कौन-सा फैसला आपके मूल्यों की परीक्षा लेगा। कोई मुश्किल बातचीत, कोई टालना, कोई समझौता। उसे एक पंक्ति में लिख लें। रात को बस इतना देखें कि आपने क्या किया।

सुझाव: अपने पाँच मूल्य मोबाइल के नोट्स में नहीं, किसी ऐसी जगह रखें जहाँ रोज़ नज़र पड़े, जैसे डायरी का पहला पन्ना या अलमारी के भीतर।

रिश्तों, काम और पैसों में सीमाएँ तय करने के कदम

सीमा दीवार नहीं है, वह दरवाज़े की तरह है। आप तय करते हैं कि कौन, कब और कितना भीतर आएगा। जिन लोगों की कोई सीमा नहीं होती, उनकी अच्छाई का फ़ायदा उठाया जाना आसान हो जाता है।

सीमा तय करने की चार सीढ़ियाँ

1. **पहचानें:** पिछले एक महीने में उन तीन मौकों को लिखें जब "हाँ" कहने के बाद आपको खीझ या थकान हुई।
2. **तय करें:** हर मौके के लिए एक साफ़ नियम बनाएँ। जैसे, "रात दस बजे के बाद काम के संदेशों का जवाब नहीं दूँगा।"
3. **कहें:** शांत और छोटे वाक्य में बताएँ। सफ़ाई में लंबी कहानी न जोड़ें। "इस बार मैं नहीं कर पाऊँगा" पर्याप्त है।
4. **निभाएँ:** पहली बार में लोग परखेंगे। दो-तीन बार एक ही जवाब दोहराने से नियम टिकता है।

क्यों: अस्पष्ट इनकार बहस को न्योता देता है, जबकि साफ़ और शांत इनकार को समझना आसान होता है।

तीन क्षेत्रों के उदाहरण

क्षेत्र	सीमा का उदाहरण	कहने का तरीका
रिश्ते	हर मांग पर तुरंत हाज़िर नहीं होना	"मैं सोचकर शाम तक बताता हूँ।"
काम	अपने हिस्से से बाहर का श्रेय या बोझ न लेना	"यह काम मेरा हिस्सा नहीं है, पर मैं इतना मदद कर सकता हूँ।"
पैसा	उधार की एक सीमा तय करना	"मैं इतनी रकम दे सकता हूँ, जो लौटे न तो भी रिश्ता न बिगड़े।"

पैसे के मामले में एक व्यावहारिक नियम यह है कि उधार उतना ही दें जितना न लौटने पर आपका बजट न हिले। बड़े निवेश, कर्ज या कानूनी मामलों में किसी योग्य वित्तीय या कानूनी सलाहकार से ज़रूर परामर्श लें।

सुझाव: कोई भी बड़ी मांग सुनते ही तुरंत जवाब न दें। "मुझे चौबीस घंटे दीजिए" एक सम्मानजनक वाक्य है, और इससे दबाव में लिए गए फैसले घटते हैं।

जब सीमा पर नाराज़गी मिले

कुछ लोग नाराज़ होंगे, खासकर वे जिन्हें आपकी बिना सीमा वाली अच्छाई से फ़ायदा था। यह नाराज़गी इस बात का सबूत नहीं कि आप ग़लत हैं। देखिए कि जो

लोग आपकी परवाह करते हैं, वे कुछ समय में समझ जाते हैं। जो नहीं समझते, उनके साथ रिश्ते की प्रकृति पर गौर करना पड़ेगा।

साप्ताहिक आत्म-मूल्यांकन और सोचने के सवाल

हफ्ते में एक बार, जैसे रविवार शाम को, बीस मिनट बैठें। यह सज़ा नहीं, हिसाब-किताब है, और इसका मक़सद खुद को कोसना नहीं बल्कि सीखना है।

बीस मिनट की दिनचर्या

1. **पाँच मिनट, तथ्य:** बीते सात दिनों में तीन फैसले लिखें जहाँ मूल्यों की परीक्षा हुई।
2. **पाँच मिनट, जाँच:** हर फैसले के आगे निशान लगाएँ: निभाया, आधा निभाया, चूक गया।
3. **पाँच मिनट, कारण:** चूक हुई तो वजह लिखें: डर, थकान, लालच, या जानकारी की कमी।
4. **पाँच मिनट, अगला कदम:** अगले हफ्ते के लिए सिर्फ़ एक छोटा सुधार चुनें।

क्यों: एक समय में एक सुधार इसलिए, क्योंकि बहुत सारे बदलाव एक साथ करने पर आमतौर पर कोई भी टिकता नहीं।

हर हफ्ते खुद से पूछने वाले सवाल

- इस हफ्ते मैंने कहाँ "हाँ" कहा, जबकि मन "ना" कह रहा था?
- किस रिश्ते ने मुझे ऊर्जा दी और किसने थकाया?

- क्या मैंने किसी की मदद अपनी मर्जी से की, या सिर्फ अच्छा दिखने के लिए?
- क्या पैसे या प्रतिष्ठा के दबाव में कोई ऐसा फैसला लिया जो मैं दोबारा नहीं लूँगा?
- मैंने अपने आत्मसम्मान की रक्षा किस छोटे तरीके से की?

सुझाव: जवाब सिर्फ सोचें नहीं, दो-तीन पंक्तियों में लिखें। लिखे हुए जवाब चार हफ्ते बाद पलटकर पढ़ने पर आपके पैटर्न साफ़ दिखा देते हैं।

पहले तीस दिन की सरल योजना

सप्ताह	काम
पहला	पाँच मूल्य लिखें और रोज़ के व्यवहार वाले वाक्य जोड़ें
दूसरा	एक क्षेत्र चुनकर उसमें एक सीमा तय करें और कहें
तीसरा	पहला साप्ताहिक मूल्यांकन करें
चौथा	मूल्यांकन दोहराएँ और सीमा में ज़रूरी सुधार करें

अगर किसी हफ्ते योजना छूट जाए, तो उसे असफलता न मानें। अगले दिन से वहीं से शुरू करें। यहाँ लक्ष्य पूर्णता नहीं, निरंतरता है।

सोचने के लिए सवाल

- मेरे पाँच मूल्य क्या हैं, और क्या मैं उन्हें एक-एक वाक्य में समझा सकता हूँ?
- किस एक क्षेत्र में सीमा तय करना मेरे लिए सबसे ज़रूरी है?
- अगर मैं अगले महीने सिर्फ़ एक आदत बदलूँ, तो वह कौन-सी होगी?
- मेरे आसपास कौन ऐसा है जिससे मैं अपनी इस योजना पर ईमानदारी से बात कर सकता हूँ?

अच्छा इंसान बने रहना अपने आप में एक अभ्यास है, और अभ्यास की तरह यह छोटे, नियमित कदमों से ही मज़बूत होता है।

योजना पर चलते समय आम गलतियाँ

शुरुआत में ज़्यादातर लोग कुछ मिलती-जुलती गलतियाँ करते हैं। इन्हें पहले से जान लेने पर आप इनसे बच सकते हैं।

- **सब कुछ एक साथ शुरू करना:** पहले ही हफ़्ते में मूल्य, सीमाएँ और मूल्यांकन तीनों उठा लेने से थकान जल्दी आती है। एक समय में एक कदम ही रखें।
- **सीमा को सज़ा बना देना:** सीमा सामने वाले को सबक सिखाने के लिए नहीं होती। लहजे में तीखापन आ जाए तो बात सीमा से हटकर झगड़े पर चली जाती है।
- **मूल्यों को दूसरों पर लागू करना:** "वह तो वादा निभाता ही नहीं" सोचना आसान है। यह सूची आपके अपने व्यवहार के लिए है, दूसरों को तौलने के

लिए नहीं।

- **एक चूक के बाद सब छोड़ देना:** एक दिन गुस्से में या थकान में गलती हो जाए, तो उसे बस दर्ज करें और आगे बढ़ें।
- **तुरंत नतीजे की उम्मीद:** लोगों का व्यवहार और आपकी अपनी आदतें हफ्तों में धीरे-धीरे बदलती हैं। पहले महीने में असर कम दिखे तो भी तरीका बेकार नहीं हो जाता।

एक छोटा उदाहरण: सीमा कैसे काम करती है

मान लीजिए रमेश एक दफ्तर में काम करते हैं। उनके सहकर्मी अक्सर शाम को अपना अधूरा काम उन्हें थमा देते हैं, और रमेश हर बार "ठीक है" कह देते हैं। घर देर से पहुँचने पर उनमें चिड़चिड़ाहट बढ़ने लगी।

उन्होंने पहले तीन ऐसे मौके लिखे। फिर नियम बनाया: "हफ्ते में एक बार ही दूसरों का काम लूँगा, और वह भी अपना काम पूरा करने के बाद।" अगली बार उन्होंने बस इतना कहा, "आज मैं नहीं कर पाऊँगा, कल सुबह देख लूँगा।" पहले दो-तीन बार सहकर्मी का मुँह बन गया। पर रमेश ने सफ़ाई में कोई लंबी कहानी नहीं जोड़ी और जवाब वही रखा। कुछ हफ्तों में लोगों ने उन्हें आखिरी मिनट पर काम देना कम कर दिया।

ध्यान दें, रमेश ने मदद करना बंद नहीं किया। उन्होंने सिर्फ़ यह तय किया कि मदद कब और कितनी होगी।

रोज़ की त्वरित जाँच-सूची

दिन के अंत में एक मिनट में इन बातों पर नज़र डालें:

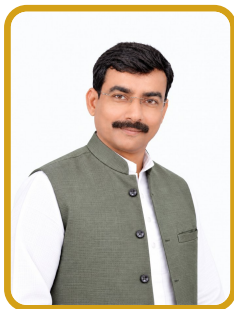
सवाल	हाँ / नहीं
आज मैंने कोई वादा किया, और क्या उसे निभाया?	
क्या किसी बात पर "हाँ" कहने से पहले मैंने रुककर सोचा?	
क्या आज मैंने किसी की बात उसकी पीठ पीछे उस तरह कही, जैसी सामने नहीं कह सकता?	
क्या मैंने कोई एक काम अपने मूल्यों के मुताबिक किया, चाहे वह छोटा ही हो?	

सारे जवाब "हाँ" होना ज़रूरी नहीं। इस सूची का काम अंक देना नहीं, ध्यान को सही दिशा में रखना है।

आगे बढ़ने से पहले एक बात

बदलाव के दौरान कभी-कभी अकेलापन लग सकता है, क्योंकि पुराने ढर्रे बदलने पर आसपास के लोग भी प्रतिक्रिया देते हैं। ऐसे समय में किसी भरोसेमंद दोस्त या परिवार के सदस्य से बात करना मदद करता है। अगर तनाव या उदासी लंबे समय

तक भारी लगे, तो किसी प्रशिक्षित परामर्शदाता से बात करना भी एक समझदारी भरा कदम है।



कामरान असद

कामरान असद मानवाधिकार मीडिया के संपादक हैं। मानवाधिकार मीडिया अपने दैनिक समाचार-पत्र, मासिक पत्रिका और डिजिटल पोर्टल के साथ 2026 में सफलता के 13 वर्ष पूरे कर रहा है। आम आदमी के अधिकारों के लिए जागरूकता और मार्गदर्शन के कार्य से जुड़े कामरान असद पब्लिक राइट्स एसोसिएशन के माध्यम से भी लोगों को उनके हक की जानकारी और सही दिशा देने का कार्य करते हैं।

पत्रकारिता के लंबे अनुभव में उन्होंने बार-बार देखा है कि सबसे ईमानदार लोग अक्सर सबसे पीछे रह जाते हैं — यही सवाल इस पुस्तक की शुरुआत है।

कामरान असद की अन्य पुस्तकें

- **बदलती पीढ़ी : सोच से समाज तक का सफ़र** — युवाओं के बदलते विचार, मूल्य और समाज को समझने की मार्गदर्शिका।
- **आम आदमी के अधिकार** — जब सुनवाई न हो, हक़ न मिले, तो क्या करें, कहाँ जाएँ — कदम-दर-कदम मार्गदर्शिका।

वेबसाइट : **kamranasad.in**

इस पुस्तक के बारे में

हम सब बचपन से सुनते आए हैं — सच बोलो, ईमानदार रहो, मेहनत करो। फिर ऐसा क्यों होता है कि ईमानदार इंसान दफ़्तर, रिश्तों और समाज में बार-बार पीछे रह जाता है, और चालाक आगे निकल जाता है?

यह पुस्तक उसी सवाल की सरल और ईमानदार पड़ताल है। 12 अध्यायों में यह समझाती है कि अच्छे लोग कहाँ चूकते हैं — संकोच, सीमा न बना पाना, अपनी कीमत खुद तय न करना — और भोलापन छोड़े बिना समझदारी से आगे बढ़ने का व्यावहारिक रास्ता क्या है। हर अध्याय में असली-से उदाहरण, तुलना-तालिकाएँ और सोचने वाले सवाल हैं, ताकि यह किताब सिर्फ़ पढ़ी न जाए, जीवन में उतारी भी जाए।

यह हार मानने की किताब नहीं है। यह अच्छाई के साथ मज़बूती से खड़े होने की किताब है।

कामरान असद की अन्य पुस्तकें :

- बदलती पीढ़ी : सोच से समाज तक का सफ़र
- आम आदमी के अधिकार

सभी पुस्तकें उपलब्ध हैं — kamranasad.in